* श्री *

प्रतापकण्ठाभरण

संकलित—

वैद्यरत्न, कविराज, डा० श्री प्रतापसिंह डी. एस्. सी.

द्वितीय संस्करण



प्रकाशक—

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन

कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

१००० प्रति सन् १९५८ ई० मूल्य १।।) रु०

॥ श्री ॥

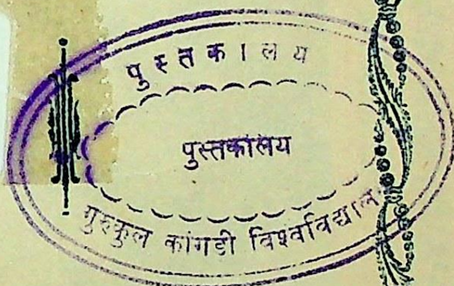
प्रतापकण्ठाभरण

संकलित—

वैद्यरत्न, कविराज, डा० श्री प्रतापसिंह डी. एस. सी.

द्वितीय संस्करण





प्रकाशक—

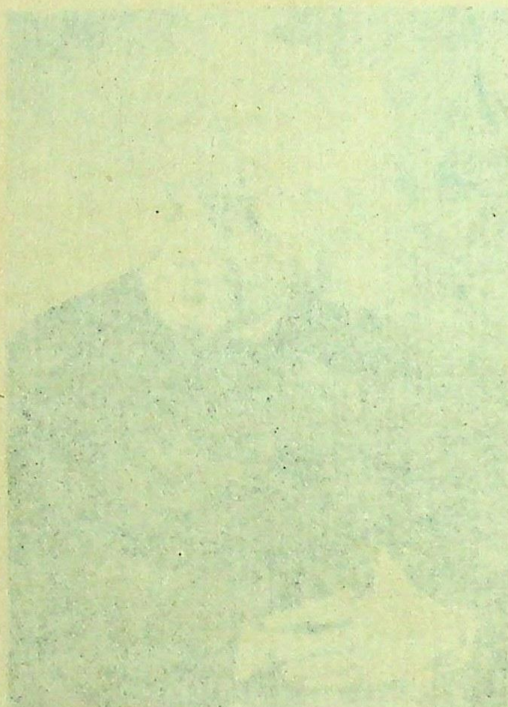
कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन

कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर)

१००० प्रति सन् १९५८ ई० मूल्य १॥) रु०



वैद्यरत्न, कविराज, रसायनाचार्य डा० श्री प्रतापसिंह
डी. एस्. सी.



प्राक्कथन व समर्पण

देशमें आज जो शिक्षा-क्रम प्रचलित है उसमें जीवन-संघर्ष सम्बन्धी साहित्य बहुत कम पढ़ाया जाता है। अधिक समय विदेशी भाषा जानने और उसीकी डिग्री प्राप्तकर आजीविका चलानेका उपक्रम किया जाता है। नवयुवक संसार-चक्रमें जब प्रवेश करता है तब पद-पदपर ठोकरें खाता है और इधर-उधरसे श्रुत ज्ञान या विदेशियों द्वारा लिखित साहित्यको पढ़कर अपने जीवनको सुखमय बनानेका यत्न करता है पर उसे भारतीय गति-विधिका पूर्ण ज्ञान न होनेसे यहाँके जीवन रहस्यको समझनेमें असमर्थता अनुभव होती है। ऐसे नवयुवकोंके लिये यह कुसुम-संचय भाषा-भाव-भावित संस्कृत पद्यमय प्रकाशित किया जा रहा है जिससे जीवनकी गुत्थियाँ सुलझीं तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा। इस प्रकाशनका सारा श्रेय बम्बई राज्यके राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजीको है जिसके लिये मैं उनका परम आभार प्रकाशित करता हूँ। श्री श्रीप्रकाशजी साहित्य रसिक, व्यवहार मर्मज्ञ तथा कर्मयोगी हैं सारा जीवन उनका देश-सेवा में ही बीता है किन्तु इस चतुर्थाश्रममें प्रिय पुत्र तपोवर्धनजीके वियोगसे वे मर्माहत हैं। अतः उनकी समवेदनामें यह संस्करण मैं स्वर्गीय श्री तपोवर्धन जीको समर्पण करता हूँ और भगवान् जगन्नियन्तासे प्रार्थना करता हूँ कि वे स्वर्गीय आत्माको चिर शान्ति प्रदान करें।

नई दिल्ली
मकर संक्रान्ति २०१३

वैद्यरत्न क. प्रतापसिंह

रसाब्धि सम्मज्जन मानसानाम्
साहित्य पीयूष मनोहराणाम् ।
ज्ञानप्रदीपान्वितरम्य भाण्ड
पद्य प्रसूनाञ्जलिरङ्घ्रिपद्मे ॥
यद्यप्यनेके रमणीयबन्धाः
विज्ञान्सदैवारमयन्ति कायम् ।
प्रतापकण्ठाभरणं तथापि
जायेत कण्ठाभरणं बुधानाम् ॥
मिष्ठान्नतृप्तास्सुजना यथेष्टम्
आस्वादयन्त्याम्लपदार्थमेव ।
प्रतापकण्ठाभरणं तथैव
गृह्णन्तु मान्या विदुषां वरेण्याः ॥
काव्यागमाभ्यास नितान्त तुष्टान्
प्राज्ञानिदं रञ्जयतु प्रकामम् ।
विशेषतस्साम्प्रतिकाङ्ग्ल विज्ञ
ज्ञानप्रसाराय मम प्रयासः ॥
बुधाः मुधा भारमपास्य, मार्ग-
प्रदर्शि, पीयूषरसप्रवर्षि ।
विस्फूर्जितोद्यन्नवजीवनाप्त्यै
प्रतापकण्ठाभरणं श्रयन्ताम् ॥

हनुमत्प्रसाद शास्त्री जामनगर

२४-७-५६

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	अशुद्धि	श्लोकाङ्क	शुद्धि
१०.	आहारं तु	२०	कुर्यादाहारं
१५.	रतो	३५	रतौ
१७.	शश्चश्च	४२	शश्वच्च
२०.	सपिषा	५३	सर्पिषा
२२.	मस्त्रया	६०	मात्रया
२५.	बलिति	६७	बालेति
२६.	बलाद्वाजीकृतो	७२	तृप्तोवाजीकृतां
३०.	द्वितोपलादयं	८७	सितोपलादयं
३१.	षमूणत्री	९१	षणमूत्री
३३.	संमीलने	९७	सम्मिलिते
३३.	मम प्रथोगः	९९	मतःप्रयोगः
४५.	ससत्यं	१४०	ससत्वं
५४.	चिन्ताकृतात्	१७५	चिन्ता कृता
६१.	कौतुक वती	२०४	कौतुकमयि
६२.	वार्धके	२०७	वार्धक्ये
६५.	गतशोको	२२०	गते शोको
६६.	वनैः	२२२	वने
६८.	यस्यारित	२३१	यस्यास्ति
७३.	स्याच्छरः शूलम्	२४८	चत्वारि शिरः शूलानि
७६.	विद्याभी	२५५	विद्याभि
८०.	लक्ष्मीः स्वया	२७२	लक्ष्मीस्त्वया
८१.	ज्जर्जरभूते	२७५	ज्जर्जरीभूते
८२.	द्रम	२७८	द्रुम
८३.	व्यतिक्रमः	२८१	चावमानता
८६.	नोष	२८९	तोषं
८६.	भवेत्	२९१	भव

पृष्ठ	अशुद्धि	श्लोकाङ्क	शुद्धि
९७.	सुन्दर्यापि	३२७	कन्या सुरत
९८.	विनं क्ष्यति	३३२	विनश्यति
१००.	तस्य	३३७	तस्या
१०६.	मातः	३६०	मातुः
११७.	विश्वेऽस्मिन्नघुना	३९५	विश्वस्मिन्नधुना
१२६.	पतने	४२३	पतनात्
१२६.	प्रयुक्ताः	४२४	प्रयुक्तां
१२९.	अधो	४३०	अहो
१३०.	न विटा न गायका	४३३	न विटा न च गायका
१३३.	सिरजनहर	४४३	सिरजनहार
१४४.	विभ्रुवन	४७९	विभ्रुवन्
१४५.	भुंवते	४८४	भुंक्ते
१५६.	दुर्मन्त्रन्नृपति	५२६	दुमन्त्रान्नृपति
१५७.	शौच	५२८	शौचं
१५८.	मध्यं	५३१	मध्ये
१६१.	भावाम्	५४०	भावात्
१६१.	भयैव	५४०	भिन्नैव
१६४.	उपानन्	५४९	उपानात्
१७२.	पिशुना	५७५	पिशुनो
१७९.	ध्वनिमिह	३	मधुरमिह
१८०.	जल्पनैर्ननु	४	जल्पसि ननु
१८३.	मनेः	१३	मनः
१८४.	तावाकतु	१५	तावान्कर्तु
१८६.	वाघ	२६	व क्
१९१.	रियमेव	४०	रिदमेव
१९२.	शूलधरो	४४	शूलधरोऽपि
१९२.	अभि	४४	अपि
१९२.	अपि	४४	अयि

सङ्कलयिता

श्री वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंहजी डी० एम० सी० का

—संक्षिप्त जीवन वृत्त—

मेरा जन्म उदयपुर स्टेट (राजस्थान) के एक कुलीन जागीरदार के घर सन् १८९२ के जून मासकी ३ तारीखको हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा मध्यमा आचार्य संस्कृत और अंग्रेजीकी उदयपुरमें ही हुई।

आयुर्वेदकी शिक्षा दीक्षा मद्रास आयुर्वेदिक कॉलेजमें वैद्यरत्न पं० डी० गोपालाचार्लु गारुकी अध्यक्षतामें हुई वहाँसे प्रथम श्रेणीमें प्रथम पदसे परीक्षा उत्तीर्णकर महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन एम० ए० एल० एम० एस०की अध्यक्षतामें कल्पतरु आयुर्वेद विद्यालयमें कलकत्तामें शिक्षा प्राप्त की; और साथ ही साथ कार्माईकल मेडिकल कालेजमें भी पढ़ता रहा। उभयविद्ज्ञान प्राप्तकर बाबा काली कमलीके यहाँ आयुर्वेदिक कालेजका संचालन किया प्रिन्सिपल के पदसे वहाँसे ललित हरि आयुर्वेद कालेजमें प्रिन्सिपल पदपर आकर कार्य करता रहा। ख्याति होनेसे पूज्य महामना मालवीय जी महाराजने हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक और सुपरिण्टेण्डेण्ट हास्पिटल फार्मेसी गार्डनके पदपर नियुक्त कर दिया वहाँ २४ वर्ष तक कार्यकर राजस्थानके आयुर्वेद विभागका डायरेक्टर बना दिया गया। वहाँसे मध्यभारतमें इन्दौरके राजकुमारसिंह आयुर्वेद

कालेजका प्रिन्सिपल रहा। फिर अवकाश ग्रहणकर गृष्टिका गागेरूकी, जटामांसी जटाशंकरी, अत्रिकन्द, सोमलता, तरुणकन्द, नागार्जुनी, पुन्नाग (पोलंग), पलाश्वतो, पपीताके बीज (इगनेशिया) भूनाग, शृगालरक्त (क्षयरोग) आदिपर अनुसंधान करता रहा।

आर्य आयुर्वेदिक ट्रस्ट बनाया उसका एक अस्पताल स्वनामधन्य बिरला परिवारकी तरफसे संचालित हो रहा है उसका मैं मैनेजिङ्ग ट्रस्टी हूँ। यादवाश्रम नामका एक आश्रम बनाया वह इस समय बनारस सेवा समिति चला रही है।

सन् १९३३ ई० अ० भा० आयुर्वेद कांग्रेसका प्रेजिडेण्ट नियुक्त हुआ और भारतीय आयुर्वेद समाजकी सेवा की तथा दो भाग आयुर्वेद महामण्डल जयन्ती ग्रन्थ प्रकाशित किये।

गवर्नमेण्ट ऑफइन्डियाने वैद्यरत्नकी पदवी व पोशाक प्रदानकी।

प्राय: बोर्ड ऑफ इन्डियन मेडिसिन, यू० पी० २६ वर्ष तक सदस्यता की। इसी प्रकार पटना गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेजकी गवर्निंग बोर्डकी सदस्यताकी। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटीकी फेकल्टी की वर्षों तक सदस्यता की। निम्नलिखित साहित्य प्रकाशित किया—

(१) आयुर्वेद खनिज विज्ञान २ भाग।

(२) प्रसूति परिचर्या।

(३) जच्चा।

(४) आरोग्य सूत्रावली।

(५) सैंकड़ों लेख प्रकाशित किये। धन्वन्तरि और प्राणाचार्य के विशेषांक संपादित किये।

(६) प्रताप कण्ठाभरण दो भाग प्रकाशित किये।
एम्० पीज० के लिये दातव्य औषधालय, प्रदर्शनालय, पुस्तकालयका उद्घाटन कराया, नई दिल्लीमें।

प्रायः अनेक सम्मेलनोंका अध्यक्ष रहा व प्रसिद्ध आयुर्वेद परीक्षाओंका परीक्षक रहा। वर्तमानमें एडवाइजर गवर्नमेण्ट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ हेल्थमें काम करता हूँ। एवं सेण्ट्रल रिसर्च इन्स्टीट्यूट इंडीजीनस मेडिसिन की व पोस्ट ग्रेजुएट सेण्टर जामनगरकी गवर्निंग बोडीका सदस्य हूँ। 'देवी टोकरा' नामक कन्दपर अनुसंधान कर रहा हूँ। इस समय मैं डायरेक्टर मूलचन्द खैरातीराम हास्पिटल व रिसर्च इन्स्टीट्यूटका काम कर रहा हूँ।

तीन पुत्र हैं जो अपने धंधेमें योग्यता पूर्वक काम कर निर्वाह कर रहे हैं। पत्नी आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीकी ग्रेजुएट हैं। आयुर्वेद की सेवामें बड़ा सहयोग दे रही हैं। एक महादेवजीका संगमरमर का मंदिर बनारसमें अपने मकानके बागमें बनाया है। मकानका नाम केसरी कुटीर है और बागका नाम प्रताप पार्क है। मेरी आयु इस समय ६६ वर्षकी है। कल्प चिकित्सामें मुझे विशेष प्रेम है। मैंने कुष्ठ रोगपर विशेष अनुभव किया है, वह निम्नलिखित है।

गंधक, पारद, हरिताल मनःशिला संखिया, दाल चिकना,

रस कर्पूर सातों द्रव्योंको समान, पारद गंधककी कज्जली बनाकर एक साथ घोटकर जलसे या घृतकुमारीके गूदेसे गोलियां सात बना लें सब द्रव्य १ तोला मात्रामें लेना चाहिये।

इन गोलियोंको काले नाग सविषके अन्दर सपेरेसे भरवाकर कपड़ मिट्टी की हुई हांडीमें जीवितको बन्द कर चढ़ा दें। खूब तीव्र अग्नि दें जब ८ पहरकी अग्नि लग चुके तब स्वांग शीतल होने पर हांडी खोलकर सावधानीसे भस्म निकाल लें। इस भस्मको कांच की शीशीमें भरकर रख दें। १ चावल मात्रा मक्खनके साथ रोगी को वमन विरेचनसे शुद्ध करके दें। ७ दिन खिलानेके बाद इच्छा भेदीका विरेचन दें। ऐसा ४० दिन करें भोजनमें लवण वर्जित भोजन दें। जहां तक सम्भव हो दूध भात पर ही निर्भर रक्खें। घृत अधिक मात्रा में दें। निश्चित गलित कुष्ठ में लाभ होता है।



❀ श्री ❀

वैद्यरत्न, कविराज, डा० श्री प्रतापसिंह डी० एस-सी० संकलितम्

प्रतापकण्ठाभरणम्



सद्बुद्धि की प्रार्थना

परमात्मा नित्य समझे जाने वाले समस्त पदार्थोंमें एक मात्र नित्य है। वह चेतनोंमें एक मात्र चेतन है। वह एक है, परन्तु सबकी कामनाओंको पूर्ण करता है। वह देव सबके कर्मोंका साक्षी है। वह समस्त भूतोंमें (पृथिवी आदि तत्त्वोंमें एवं प्राणियोंमें) छिपा हुआ है। वही परमात्मा हमें शुभ बुद्धिसे युक्त करे। यह प्रार्थना करनी हो तो याद कीजिए उपनिषद्का मन्त्र—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्,
एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
साक्षी देवः सर्वभूतेषु गूढः
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु ॥१॥

कल्याण-कामना

भगवान् रामका नाम समस्त कल्याणोंका एक मात्र निधान (कोष या खजाना) है, कराल कलिकालके मलों (समस्त दोषों) का मथन (नाश) करने वाला है, पवित्र करने वाली वस्तुओंमें एक मात्र पवित्र है, शीघ्र परम-पदकी प्राप्तिके लिये प्रस्थान करने वाले मुमुक्षुजनोंके लिये पाथेय (मार्गका भोजन) है, कविवरोंके वचनों

का अर्थात् कविताओं और काव्योंका एक ही विश्राम स्थान है, सज्जनोंका जीवन है और धर्मरूपी कल्पवृक्षका बीज है। वह राम नाम आपके लिये भूतिप्रद (ऐश्वर्यदायी) बने। निरन्तर राम-नाम का जप करना चाहिये, फिर ऐश्वर्य सम्पत्ति आदि कुछ दूर नहीं है। लीजिए इसी भावका यह श्लोक याद कर लीजिए—

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानाम्,
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्,
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

पूजनीय आदर्श पुरुष

सज्जनोंके साथ सङ्गति करनेकी वाञ्छा, दूसरोंके गुणोंको ग्रहण करनेमें ही प्रीति; गुरुजनोंके प्रति नम्रता, विद्याभ्यासमें तत्परता, अपनी ही पत्नीमें अनुराग, लोकापवाद (लोक निन्दा) से भय, शिवजीमें भक्ति, आत्मदमन अर्थात् काम, क्रोध आदि मानसिक वेगोंको रोकनेमें शक्ति और दुर्जनोंके संसर्गसे मुक्ति— ये निर्मल गुण जिनमें रहते हैं, उन नरपुङ्गवोंको नमस्कार है। इस प्रकारके गुणोंसे विभूषित आदर्श पुरुष सभीके लिये पूजनीय होते हैं। लीजिए श्लोक—

वाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्।
भक्तिःशूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले,
ह्येते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥३॥

दारिद्र्यनाश का उपाय

"पञ्चाङ्ग" में देखिए, जिस दिन रविवार और पुष्य नक्षत्र हो, उस दिन एक ऐसी अंगूठी बनवाइए जिसमें सुवर्ण १२ भाग रजत (चांदी) १६ भाग और ताम्र १० भाग संमिलित हों। इन तीनों धातुओंके तार खिंचवाकर जिस प्रकार तीन डोरोंको बटकर एक डोरा बनाते हैं, उस प्रकार अंगूठीके रूपमें तीनों तारोंको गुँथवा लीजिए। स्मरण रहे तारोंकी झलाई न हो। इस अंगूठीको धारण, करनेसे घरकी दरिद्रता नष्ट होती है। श्लोक याद कर लीजिए।

स्वर्णं तारं च ताम्रं च ह्यर्कषोडशखेन्दुभिः।
रविपुष्यकृता मुद्रा गृहदारिद्र्यनाशिनी ॥४॥

दारिद्र्यका उपदेश

जिस घरमें चूहे नृत्य करें, रमण करें और विराम या विश्राम करें, समझ लो कि उस घरमें मेरा (दारिद्र्य) आगमन हो चुका। इस प्रकारके दारिद्र्योपद्रुत घरमें निवास करना श्रेयस्कर नहीं। उससे तो अच्छा यह है कि उस घरको छोड़कर मनस्वी पुरुष सकुटुम्ब वनमें जा बसे। दरिद्रता बड़ी ही कष्टप्रद है। गृहस्थको दरिद्रतानाशके लिये सतत चेष्टा करनी चाहिये। अन्यथा वनमें जा निवास करना चाहिये। श्लोक यह है।

मूषका यत्र नृत्यन्ति रमन्ते विरमन्ति च।
तत्र मदागमं ज्ञात्वा सकुटुम्बो वने वसेत् ॥५॥

आलसी मत बनो

वेद भगवान्‌की आज्ञा है कि उठो, जागो और भगवान्‌ने जो श्रेष्ठ पदार्थ दिये हैं उन्हें प्राप्त करो और समझो-बूझो। यह संसार

मार्ग छुरेकी तीक्ष्ण धारके समान दुष्पार है। कवियों क्रान्तदर्शी विद्वानोंने इस मार्गको दुर्गम बताया है। मन्त्र यह है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥६॥

—कठोपनिषद्

दरिद्रता और भूखके विरुद्ध अभियान कीजिए

कुरुक्षेत्रके रणाङ्गणमें लाखों वीरोंके शवोंसे मेदिनी पट गई है—वह एक भीषण श्मशान भूमि बन गई है। वीर पत्नियां और वीर माताएं अपने पतियों और पुत्रोंके अन्तिम संस्कारके लिये उनके शवोंकी गवेषणामें संलग्न हैं। ऐसे समयमें पुत्र शोकातुरा महारानी गान्धारी भगवान् कृष्णके प्रति संसारकी कष्टदायक बातों को गिनाती हुई क्षुधा (दरिद्रता जनित भूख) को पुत्र शोकसे भी अधिक कष्टदायक बतला रही है वे कहती हैं—हे वासुदेव ! वृद्धावस्था कष्टदायक है, निर्धनावस्थाका जीवन भी कष्टप्रद है, पुत्रशोक तो महान् ही कष्टदायक है परन्तु, क्षुधा (भूख) तो इन सब कष्टप्रद बातोंसे बढकर है। देखिये श्लोक—

वासुदेव ! जरा कष्टं कष्टं निर्धनजीवनम् ।
पुत्रशोको महाकष्टं कष्टात्कष्टतरं क्षुधा ॥७॥

भूखेको कुछ भी अच्छा नहीं लगता

किसी कविका कथन है कि—उत्तमोत्तम शय्यायें, वस्त्र, चन्दना-लेपन, मनोहर हास्य-मुस्कराहट, मधुर सङ्गीत और चन्द्रमुखी तरुणियाँ आदि वस्तुएँ भूखे-प्यासे जीवको अच्छी नहीं लगती हैं। संसारके ये सारे सुखारम्भ एक सेर चावल (अन्न) से पेट भर जाने

पर ही अच्छे लगते हैं। इस मानवको पेट भरनेका साधन जुटाकर निश्चिन्त बनना चाहिये। यह है इस भावका बोधक श्लोक—

शय्या वस्त्रं चन्दनं चारु हास्यं मिष्टं गीतं चन्द्रमुख्यस्तरुण्यः।
नो रोचन्ते क्षुत्पिपासातुराणां सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः॥८॥

एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत

जीवनके साधन जुटाना, सांसारिक जीवनमें सफलता पाना आदि सब कुछ स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। शास्त्रका तो कथन है कि—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंका सर्वोत्तम मूल आरोग्य ही है। यह आरोग्य नियमित या संयमी जीवनसे प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक मनुष्यको स्वस्थ रहनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह है श्लोक—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
नियताज्जीवनाच्चैतदारोग्यमुपलभ्यते ॥ ९ ॥

नियमित जीवन सफलताकी कुञ्जी

अपना आहार (खाना-पीना) और विहार (रहन-सहन-व्यवहार आदि) युक्तियुक्त रखना चाहिये। संसारके तथा शरीरके सब कार्य तथा तदर्थ चेष्टाएं भी सब युक्तियुक्त होनी चाहिये। यहाँ तक कि सोना और जाग कर उठना भी युक्तियुक्त ही होना चाहिये। इस प्रकारके आचरणसे ही मानवका 'योग साधन' दुःख विनाशक होता है। कर्मकुशलताका ही नाम 'योग' है "योगः कर्मसु कौशलम्" लीजिए इस भावका भगवद्वाक्य—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा॥(गीता)१०॥

शरीर रक्षाके लिये भोजनमें सावधानी रखिये

शरीर भोजनसे ही बनता है तथा पुष्ट होता है। शरीर रक्षाके लिये भोजनमें सदा सावधानी रखनी आवश्यक है। भोजनके सम्बन्धमें अनेक परीक्षणोंके बाद आयुर्वेदके महान् आचार्योंने कुछ नियम निश्चित कर दिये हैं। उनका पालन करना चाहिये। वे नियम ये हैं—(१) मानव मात्रके लिये कुछ पदार्थ स्वभावत: ही हित होते हैं तो कुछ अहित भी। उनमेंसे प्रयोगसे निर्णय करके हित पदार्थोंका ही सेवन करना चाहिये तथा अहित पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये। हित पदार्थोंका भोजन करने वाला मनुष्य 'हिताशी' कहलाता है। (२) इसी प्रकार मनुष्यको 'मिताशी' भी होना चाहिये। अर्थात् हित पदार्थोंको भी अत्यधिक मात्रामें नहीं खाना चाहिये। जितना भोजन स्वास्थ्यको विकृत न कर यथा समय जीर्ण हो जाय तथा बल-वर्ण-सुख-आयु आदिको पुष्ट करे, उतना ही भोजन करना चाहिये। ऐसा भोजन 'मित' या 'परिमित' भोजन कहलाता है और भोजनकर्त्ता 'मिताशी' (३) भोजनके विषयमें तीसरा नियम है 'कालभोजी' होना। प्रतिदिन भोजन करनेका कोई नियत समय होना चाहिये। इन नियमोंके पालनके बिना किया जाने वाला भोजन 'विषमाशन' अर्थात् विषम भोजन बन जायगा। यह 'विषमाशन' ही प्रायः अनेक रोगोंका उत्पादक होता है। (४) चतुर्थ नियम है 'जितेन्द्रिय' होना। अर्थात् जिह्वाचापल्य और मन की चञ्चलता पर नियन्त्रण रखना। विद्वान् अथवा बुद्धिमान् मनुष्यको विषमाशन जन्य रोगोंसे बचनेके लिये बहुत सावधानी रखनी चाहिये। श्लोक यह है —

हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः।
दृष्ट्वा बहुविधान् रोगान् विपश्चिद् विषमाशनात् ॥११॥

भोजन और वचन सन्तुलित चाहिये

भोजन समय पर किया जाय। वह मधुर रस प्रायः स्निग्ध, पथ्य, स्वास्थ्यके लिये हित तथा परिमित (न कम और न अधिक किन्तु नपा तुला) होना चाहिये। वचन भी समयपर बोला जाय। वह भी मधुर, प्रिय, सत्य, परिमित और सबके लिये हितकारक होना चाहिये। इस पद्यका स्मरण रखिये—

काले भुञ्जीत मधुरं स्निग्धं पथ्यं हितं मितम्।
काले ब्रुवीत मधुरं प्रियं तथ्यं हितं मितम् ॥१२॥

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य

जो मनुष्य नित्य हित आहार-विहारका सेवन करता है, जो प्रत्येक कार्य सोच-विचार कर करता है, जो सभी प्रकारके विषयोंमें आसक्त या लिप्त नहीं होता, जो यथा शक्ति दान देता है या दूसरोंकी सहायता करता है, जो सब प्राणियोंमें समान भाव रखता है किसीसे रागद्वेष नहीं करता है, जो सत्यपरायण रहता है, जो अपराधीको दण्ड देनेकी शक्ति होते हुए भी क्षमाशील होता है और जो आप्त (प्रामाणिक या आदरणीय) जनोंके उपसेवनमें निरत रहता है, वह मनुष्य सदा नीरोग रहता है उसे कभी कोई रोग नहीं सताता। याद कीजिए यह श्लोक—

नित्यं हिताहार विहार सेवी समीच्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः१३॥

बलवान् बनो

शरीरकी दृढता सांसारिक समस्त कार्योंमें सफलता प्राप्तिका मुख्य साधन है। स्वास्थ्यके नियमोंका पालन, आहार-विहारमें

संयम और नियमित व्यायामसे शारीरिक और मानसिक बल अक्षुण्ण बना रहता है। अतः प्रत्येक मनुष्यको बलवान् बनना चाहिए। निर्बल मनुष्य तो अपने आत्माको भी नहीं प्राप्त कर सकता देखिये उपनिषद्का वाक्य—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

नियमित व्यायामके गुण

नियमित व्यायामसे शरीर हलका और फुर्तीला रहता है, काम करनेकी शक्ति प्राप्त होती है, अग्नि प्रदीप्त रहती है, मेद (चर्बी) का क्षय होनेसे बेढंगा मोटापन दूर होता है और शरीर सुगठित, सुडौल और सुन्दर बन जाता है। यथा —

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते॥ १४॥

व्यायाम की मात्रा

अधिक व्यायामसे हानि भी होती है। अतः अपना बलाबल देखकर आधी शक्तिको ध्यानमें रखकर व्यायाम करे। व्यायाम करने वालेको भोजन स्निग्ध करना चाहिये। यथा—

अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः॥१५॥

भोजनानन्तर कर्तव्य

व्यायाम, भोजन, निद्रा, ब्रह्मचर्य आदि जीवनको सुखमय बनाने के उत्कृष्ट साधन हैं। जो स्त्री-पुरुष नियमसे विधि पूर्वक इनका सेवन करते हैं, वे सबल एवं स्वस्थ बने रहते हैं। नियम ये हैं—

भोजनके बाद 'शतपदी चंक्रमण' (सौ पैंड टहलना) करना

चाहिये। तदनन्तर शय्यारूढ होकर निश्चिन्ततासे राजा-महाराजों के समान आराम करना चाहिये—'भोजनान्ते राजवत्तिष्ठेत्'। अच्छा हो उस समय पादसंवाहन और प्रमोद पूर्ण वार्तालापके लिए पत्नी भी उपस्थित हो। आधुनिक समयमें तो आमोद-प्रमोदके लिये 'रेडियो' की व्यवस्था धनिकोंने कर ली है। श्लोक यह है—

भोजनान्ते शतपदं गच्छेच्छय्यां ततः परम्।
शय्यायां जायते रोगो यदि कान्ता न लभ्यते ॥१६॥

पान खाना लाभप्रद

भोजनान्तमें पान चबाना लाभ प्रद माना गया है। इससे हरा द्रव्य (क्लोरोफिल) मिलता है जो पाचन शक्ति बढाता है तथा शरीरमें चूने (कैल्शियम) की कमी की पूर्त्ति करता है। पान कत्था चूना, सुपारी, इलायची, मुलेठी, केसर, कस्तूरी, जावित्री, जायफल, लवंग, कर्पूर आदिसे सुवासित होना चाहिये। जहाँ तक संभव हो पान अपने हाथका बना हुआ होना चाहिए। बाजारू और तम्बोलिन (पान बेचने वाली स्त्री) आदिका बनाया हुआ उचित नहीं। जयपुरीय कवि श्री कृष्णराम भट्ट राजवैद्यने लिखा है कि प्रायः पान बेचने वाली स्त्रियां सच्चरित्र नहीं होतीं। वे पान देनेके साथ भयङ्कर प्रलोभन भी उपस्थित करती हैं। सावधान! यह श्लोक याद रखिये—

ताम्बूलगोपी शुभकत्थ चूर्णं पूगादिभिः पूर्णकरण्डगर्भा।
ददाति मूल्येन सुवर्ण वर्णं पुराणपर्णं नवयौवनं च ॥१७॥

पानके गुण

पान बेचने वाली रमणी चूना, कत्था, सुपारी आदिसे भरे हुए पान अपने कण्डियेके अन्दर रखती है और मूल्यसे पका सुवर्ण

बर्णसा पीला पान और नव यौवन देती है। पानके अनेक गुण वैद्यक ग्रन्थोंमें लिखे हैं पर आगे लिखा श्लोक स्मरण रखने लायक है।

ताम्बूलं कटु, तिक्त, मिश्र मधुरं, क्षारं कषायान्वितम्
वातघ्नं, कफ नाशनं, कृमिहरं, दौर्गन्ध्यदोषापहम्।
वक्त्रस्याभरणं मलापहरणं, कामाग्निसंदीपनं
ताम्बूलस्य सखे त्रयोदश गुणाः स्वर्गेऽप्यमी दुर्लभाः ॥१८॥

भोजन अपनी कमाईका जहाँतक संभव हो करना चाहिये, बुद्धिका विकास भोजनपर निर्भर है। नीतिकार कहते हैं।

यादृशं भुज्यते ह्यन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी।
दीपोभक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते ॥१९॥

"जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन" यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है। दीपक अन्धकारको दूर करता है अर्थात् खाता है तो पैदा भी काला धूआं ही करता है। भोजन वृत्तिके लिये प्राचीनोंका आदेश है कि-

आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यम्
आहारं तु प्राण संधारणार्थम्।
प्राणाः धार्याः तत्त्व जिज्ञासनार्थम्
तत्त्वं ज्ञेयं येन भूयो न दुःखम् ॥२०॥

आहार कमानेके लिए ऐसी सेवावृत्ति आदि स्वीकार करे जिसके करनेसे लोकमें निन्दा न हो। आहार इतना ही करें कि जिससे जीवनका संचार होता रहे—शरीर न मोटा या अति स्थूल हो न अति कृश हो, मध्यम शरीर सुन्दर सुदृढ़ रहना चाहिये। प्राण धारण कर तत्त्वकी जिज्ञासा करे वह ज्ञान ऐसे तत्त्वका हो कि जिससे फिर दुःख न हो। रोजगार इस नियमसे करे कि जिसमें

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय हो एवं संचित सम्पत्तिको देशकी सम्पत्ति समझे श्री मद्भागवतमें लिखा है कि—

यावद्भ्रियेत जठरं तावत्सत्त्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभि मन्येत सस्तेनो दण्ड मर्हति ॥२१॥

पारिवारिक जीवन यात्रा सुख पूर्वक चले इतनी ही संपत्ति रखनेका मनुष्यको अधिकार है। जो मनुष्य इससे अधिक चाहता है वह समाजका चोर है और दण्डनीय है। किन्तु इसके विपरीत संसारमें धनी और धनकी महिमा बहुत गाई गई है यथा—

ब्रह्मघ्नोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम् ।
शशिना तुल्य वंशोऽपि निर्धनः परिभूयते ॥२२॥

जिस पुरुषके पास (विपुल) पर्य्याप्त धन है वह ब्रह्म घाती होने पर भी पूजनीय बन जाता है। किन्तु निर्धन पुरुष चन्द्रमाके जैसा उज्ज्वल वंशका होनेपर भी पराभवको प्राप्त करता है। किसीने ठीक कहा है—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
नच्छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलम्
हिरण्यमेवार्जय निष्फला कलाः ॥२३॥

जिसके पास धन नहीं है, उसके सब गुण निष्फल होते हैं। भूखा आदमी व्याकरणको खाकर पेट नहीं भर सकता और न काव्य रसका पान करके प्यास मिटा सकता है। न किसीने छन्द शास्त्रका ज्ञान प्राप्तकर अपने कुलका उद्धार किया है। इसलिए धन कमानेका ही यत्न करना चाहिये।

माता निन्दति नाभिनन्दति पिता भ्राता न संभाषते
भृत्यः कुप्यति नानुगच्छति सुतः कान्ता च नालिङ्गति।
अर्थप्रार्थनशंकया न कुरुते संभाषणं वै सुहृत्
तस्माद् द्रव्यमुपार्जयस्व सुमते! द्रव्येण सर्वे वशाः ॥२४॥

बुद्धिमान् पुरुष सदा धन कमानेका उद्योग करता रहे। धनसे सब वशमें आ जाते हैं। अन्यथा निर्धनकी माता निन्दा करती है, पिता कभी अभिनन्दन नहीं करता; भाई भी बात नहीं करता है, पुत्र भी अनुगमन नहीं करता है, यहाँतक कि नौकर भी बातपर क्रोधित होते हैं, स्त्री भी प्रेम नहीं करती, और धन मांगनेके भयसे मित्र लोग भी वार्तालाप नहीं करते।

वयो वृद्धास्तपो वृद्धा ज्ञानवृद्धांश्च ये परे।
ते सर्वे धनवृद्धस्य द्वारि तिष्ठन्ति किंकराः ॥२५॥

वयो वृद्ध, तपो वृद्ध, ज्ञान वृद्ध या अन्य बली, शूरवीर, कलाकार आदि सब धन वृद्ध पुरुषके द्वारपर नौकर होकर दरवाजेपर हाजिर रहते हैं।

अपुत्रस्य गृहं शून्यं सन्मित्र रहितस्य च।
मूर्खस्य च दिशः शून्या सर्वं शून्यं दरिद्रता ॥२६॥

जिसके यहाँ पुत्र न हो उसका घर सूना है, जिस पुरुषके सज्जन मित्र नहीं है वह सदा शून्य समझा जाता है। मूर्ख पुरुषकी दिशायें शून्य हैं क्योंकि वह किसीके साथ पत्र व्यवहार तक नहीं कर सकता, किन्तु दरिद्र पुरुषका तो सारा संसार ही सूना है। दरिद्रता दूर करना मनुष्य मात्रका कर्तव्य है। भीष्म पितामहने अर्थके आधीन होकर कौरवोंकी सेवाकर अन्यायका साथ दिया, इसका महाभारतमें नीचेके पद्यमें हृदय द्रावक वर्णन है—

अर्थस्य पुरुषो दासो नार्थो दासोऽस्ति कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥२७॥

हे महाराज युधिष्ठिर ! यह सत्य है कि मनुष्य धनका दास है, धन किसीका दास नहीं है। अतः मैं (भीष्म) धनके लालच से कौरवोंके साथ बँधा हुआ हूँ। जिसके पास धनकी निरन्तर आमदनी होती रहती है उसका नष्टप्राय यौवन भी फिरसे आजाता है, इसका वर्णन अगले पद्यमें बड़ा रोचक सत्यान्वेषणके उदाहरण के साथ किया गया है।

अर्थो नराणां पतिरङ्गनानां वर्षा नदीनां ऋतुराट् तरूणाम् ।
स्वधर्मचारी नृपतिः प्रजानां गतं गतं यौवनमानयन्ति ॥२८॥

धनागम पुरुषोंका नष्ट यौवन फिरसे ला देता है। उत्तम, सुदृढ, सुन्दर, युवा पुरुष पति रूपमें प्राप्त होनेपर गलित यौवना स्त्रियें फिर युवति हो जाती हैं। वर्षा ऋतुके उत्तम होनेसे नदियों में बाढ़ें आ जाती हैं। वसन्त ऋतुके समयमें बूढे वृक्ष भी अपने शरीरको नवपल्लवोंसे सुसज्जितकर युवत्व ग्रहण करते हैं। प्रजा जन भी अपने धर्मपर दृढ़ रहकर प्रजारक्षक बने हुए राजाको पाकर अपने नष्ट उत्साहको पुनः प्राप्त कर व्यवसायकी उन्नतिकर नवजीवनका सुख प्राप्त करते हैं। मनुष्य केवल पैसा ही न कमावे, इसके साथ निम्न पद्योक्त चार धन और भी कमावे, ताकि सर्वत्र उसे सुख मिले।

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः ।
परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्र वै धनम् ॥२९॥

विदेशोंमें विद्या धनका काम देती है, आपत्तिके समय बुद्धि-धनका काम देती है, परलोकमें सुख पानेके लिये धर्माचरण ही धन है। किन्तु शील तो सर्वत्र ही धन है अर्थात् शील धन सदा

पुरुषकी सहायता करता है। शील किसे कहते हैं ? इसका स्वरूप निम्न पद्यमें उत्तम रूपसे दिया है।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानश्च शीलमेतद्विदुर्बुधाः ॥३०॥

मन वचन कर्मसे किसीका द्रोह न करे एवं अनुग्रह करें और दान दें इसे ही विद्वान् लोग शीलका आचरण कहते हैं।

शीलकी रक्षा करने ही से जीवन रक्षा है

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः ॥३१॥

शीलकी यत्न पूर्वक रक्षा करे, धन तो आता जाता ही रहता है धन हीन पुरुष क्षीण नहीं होता, परन्तु जिसका वृत्त (शील) नष्ट हो गया है वह नष्ट हो जाता है। नीचे लिखी वृत्तिके पुरुषों को धन प्राप्त नहीं होता है।

नालसा प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीबा न च मानिनः।
न च लोकापवाद्भीताः न च शश्वत्प्रतीक्षिणः ॥३२॥

आलसी पुरुषोंको धन नहीं मिलता है। न नपुंसकोंको, न अभिमानियोंको, न लोकापवादसे डरने वालोंको और न निरन्तर प्रतीक्षाके अन्दर बैठे रहने वाले पुरुषोंको ही धनकी प्राप्ति होती है अतः आलस्य, लोकापवादका भय, अभिमान छोड़कर पुरुषार्थ पूर्वक धन प्राप्तिके लिये यत्न करे। जहाँ भी धन मिले वहाँसे प्राप्त करनेका यत्न करे। प्राचीनोंका उपदेश है कि—

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि कांचनम्।
नीचादप्युत्तमा विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥३३॥

जिसके पास धन नहीं उसे उचित है कि वह विषसे भी अमृत प्राप्त करनेका यत्न करे अर्थात् दुष्ट प्रकृति वालोंसे भी सार प्राप्त करनेकी युक्ति करें। सुवर्ण जैसी वस्तु अपवित्र स्थानोंसे भी प्राप्त कर ले। नीच जनके पास उत्तम विद्या हो तो उसे भी नम्रतादि गुणोंसे प्राप्त करले और स्त्री रत्न हो तो दुष्कुलसे भी ग्रहण करें। स्त्री रत्नके लक्षण ये लिखे हैं—

दक्षाप्रजावती साध्वी प्रियवाक् च मनोहरा।
गुणैरेभिस्तु संयुक्ता सा श्रीः स्त्री रूपधारिणी ॥३४॥

जो स्त्री चतुर सन्तान वाली सदाचारिणी प्रियवादिनी और सुन्दरी हो उसे साक्षात् ही स्त्री रूपमें लक्ष्मी समझना चाहिये। यदि ऐसी न मिले तो आगे लिखे लक्षण वाली स्त्री प्राप्त करनेका यत्न करें।

कार्ये दासी रतो रंभा भोजने जननी समा।
विपत्तौ बुद्धिदात्री च सा च भार्या सुदुर्लभा ॥३५॥

घरका संचालन सेवा भावसे करने वाली, संभोग समयमें रंभा जैसा आनन्द देने वाली भोजनके समय माताकी तरह जिमाने वाली और विपत्तिके समय बुद्धि देने वाली पत्नी दुर्लभ होती है। अतः पत्नी प्राप्त करनेमें उसके परीक्षणका पूर्ण यत्न करना चाहिये।

सरसा सालंकारा सुपद न्यासा सुवर्णमय मूर्तिः।
आर्या तथैव भार्या न लभ्यते पुण्यहीनेन ॥३५॥

सरस अलंकार युक्त सुन्दरतासे पैर रखकर चलने वाली और सोनेके समान गौरवर्णकी सुन्दरी भार्या (आर्या छन्दकी तरह पुण्य

के विना प्राप्त नहीं होती है) रसयुक्त, अलङ्कारालंकृत, सुन्दर पद रचनासमन्वित, सुन्दर वर्णोंसे निगुम्फित आर्या छन्द भी विना पुण्यके नहीं बनाया जा सकता। कुछ विद्वानोंका मत है कि पुण्य करनेसे उत्तम स्त्री प्राप्त होती है।

तस्याः स्तनौ यदि घनौ जघनं विहारि
वक्त्रं च चारु तव चित्त किमाकुलत्वम्।
पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा
पुण्यैर्विना नहि भवन्ति समी हितार्थाः ॥३६॥

हे चित्त! कठोर, कुच और घन, जघन वाली सुन्दर मुखी नारी की तरफ आकृष्ट होकर विकल होते हो तो पुण्य करो, पुण्यके विना मनोवाञ्छित स्त्री नहीं मिलती है। स्त्री मिलजानेपर उसमें कुछ विशेषताएं हैं उनका ध्यान भी रखना आवश्यक है।

स्त्रियं च यः प्रार्थयते सन्निकर्षं च गच्छति।
ईषच्च कुरुते सेवां तमेवेच्छन्ति योषितः ॥३७॥

जो पुरुष स्त्रियोंको आकृष्ट करनेके लिये विविध प्रकारकी प्रार्थना करते हैं और उनके संपर्कमें आते हैं एवं थोड़ी बहुत सेवा कर देते हैं, उन्हें ही स्त्रियें चाहने लगती हैं। इस विषयमें नीतिकारों का मत है कि स्त्रियोंका सतीत्व नीचे लिखे विधान ही से सुरक्षित रह सकता है।

स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः।
तेन नारद नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥३८॥

स्त्रियोंको एकान्त स्थान न मिले, समय न मिले और प्रार्थना करने वाला पुरुष न मिले तब ही उनमें सतीत्व रह सकता है।

अन्यथा पतन होना संभव है। पतित स्त्रियां फिर कुल मर्यादा भंग करनेमें संकोच नहीं करती हैं। यथा—

कुल पतनं जन गर्हां वन्धनमपि जीवितव्य सन्देहम्।
अङ्गी करोति कुलटा सततं परपुरुष संसक्ता ॥३९॥

जो स्त्री सदा परपुरुषमें आसक्त रहती है, वह कुलका पतन, जगनिन्दा, बन्धन और प्राणभयकी भी परवाह नहीं करती है। अतः सुन्दर या सुरूप पुरुषोंके संपर्कसे स्त्रियोंको बचाये रखना चाहिये।

सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा युवानं रति सुन्दरम्।
योनिः क्लिद्यति नारीणां कामिनीनां निरंतरम् ॥४०॥

सुन्दर, सुवेष, काम कला कुशल, पुरुषको देखकर कामिनी स्त्रियोंकी योनि सदा सरस बनी रहती है। इस लिये वे ऐसे ही पतिको प्रेम करती हैं जो उनकी कामाभिलाषाको पूर्ण कर सके।

प्राणाधिक प्रिय तमः संभोग कुशलः प्रियः।
सुतात् परमति स्नेहं कुर्वन्ति रति कर्तरि ॥४१॥

संभोग सुख देने वाले पतिको प्राणोंसे भी अधिक प्रेम करती हैं और अपनी संतानसे भी अधिक सुख देती हैं। जो पुरुष रति सुख नहीं दे सकते उन्हें शत्रुकी तरह समझती हैं। सदा उनके साथ झगड़ती रहती हैं। यह स्नेहाभावका पूर्ण लक्षण है।

पश्यन्ति रिपु तुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम्।
शश्वच्च कलहायन्ते तेनसार्धं सुकोपना ॥४२॥

फा० नं० २

यह ध्यान रहें सौ वर्षों तक भी स्त्रियोंकी कामवासना नष्ट नहीं होती है। मनुष्य तो अशक्तिके कारण कामकलासे निवृत्त होता है, परन्तु स्त्रियां केवल धैर्यसे ही कामवासनापर विजय पाती हैं।

न शतेनापि वर्षाणामपैति मदनाशयः ।
तत्राशक्त्या निवर्तन्ते नरा धैर्येण योषितः ॥४३॥

स्त्रियाँ बलवान्, दीर्घलिङ्गी, दृढाघाती और चिरकाल तक मैथुन करने वाले पुरुषको ही पसन्द करती हैं। पंडित या शूरवीर मनुष्य भी यदि इन कमजोरियों वाले हो तो उन्हें पसन्द नहीं आता है।

दीर्घलिङ्गी दृढाघाती चिरमैथुन कारकः ।
स एव वल्लभः स्त्रीणां न शूरो न च पंडितः ॥४४॥

इसलिए विवाहित पुरुषको यह शक्ति सदा संपन्न रखनी चाहिए। इस कार्यको संपादन करनेके लिये शरीरको विरेचन आदिसे शुद्ध कर प्रतिदिन निम्न लिखित रसायन प्रकृतिके अनुसार सेवन करता रहे। जरा (वृद्धावस्थाके विकार) और व्याधिको दूर करने वाले द्रव्योंको रसायन कहते हैं।

यज्जराव्याधि विध्वंसि भेषजंतद्रसायनम् ॥४५॥

इस प्रकारकी औषधियोंको शुद्ध शरीर होकर युवावस्थाके प्रारंभ कालमें या मध्यमावस्था (चालीससे साठ वर्षकी अवस्था) में सेवन करें।

पूर्वेवयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् ॥४६॥
नाविशुद्ध शरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः ।
न भाति वाससि क्लिष्टे रङ्ग योग इवार्पितः ॥४७॥

शरीरको शुद्ध किये बिना रसायन औषधिके सेवनसे कोई लाभ नहीं होता है। जैसे मलिन वस्त्रपर चढानेसे रंग अच्छा नहीं चढ़ता है।

दीर्घमायुः स्मृति मेधामारोग्यं तरुणं वयः ।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रिय बलोदयम् ॥४८॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात् ।
लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥४९॥

रसायनके सेवनसे दीर्घ आयु, स्मृति, धारणाशक्ति, आरोग्य, तारुण्य, प्रभा, वर्ण और स्वरमें उत्कृष्टता स्वर, देह तथा इन्द्रियोंमें बल का उपचय, वाक् सिद्धि, सुरतक्षमता और कान्ति प्राप्त होती है। रस-रक्तादि धातुओंकी शरीरमें उत्तमतया उत्पत्ति होती है। नीचे पांच रसायन योग दिये जाते हैं जिनका उपयोग देशकाल और प्रकृतिके अनुसार करनेसे यथेष्ट लाभ होता है।

(१) गुडूची, गोक्षुरु, आंवला तीनों द्रव्योंको छायामें सुखाकर घृत और शक्करके साथ प्रातः काल सेवन करें चूर्णकी मात्रा ६ माशासे १ तोला। घृत और शर्करा यथा रुचि मिला लें।

अमृतामलकी त्रिकण्टकानां हविषा शर्करया निषेवणेन ।
अजरा,अमरा,अपारवीर्या,अलिकेशाः,अदितेः सुता बभूवु॥५०

(२) आँवले, काले तिल और भृङ्गराज इन तीनोंके चूर्णको रसायन विधिसे सेवन करनेसे मनुष्य १०० वर्षतक आरोग्य युक्त जीवन प्राप्त करता है। उसकी इन्द्रियाँ निर्मल रहती हैं और कृष्ण केश बने रहते हैं।

धात्री तिलान् भृङ्गरजो विमिश्रान् ये भक्षयेयुर्मनुजाःक्रमेण।
ते कृष्ण केशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याधयो वर्षशतं भवेयुः॥५१॥

(३) अश्वगंधाके चूर्णको दूध, घृत, तैल अथवा मन्दोष्ण जल के साथ सेवन करनेसे १५ दिन ही में लाभ प्रतीत होता है। उससे दुर्बल शरीरकी पुष्टि ऐसे होती है जैसे नवाङ्कुरित धानकी वर्षा होनेसे होती है।

पीताऽश्वगंधा पयसाऽर्द्धमासं
घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥५२॥

(४) विधारेकी जड़के चूर्णको सात बार शतावरके रस की भावना देकर सुखाकर चूर्ण बनाकर काचके ढक्कनके पात्रमें रखलें। १ तोला मात्रासे घृतके साथ सेवन करनेसे एक मास हीके प्रयोगसे बुद्धि मेधा स्मृति बढ़ती है और शरीर बलि-पलित रहित हो जाता है।

वृद्धदारकमूलानिश्लक्ष्ण चूर्णानि कारयेत्।
शतावर्यारसेनैव सप्तवारांश्च भावयेत् ॥
अक्षमात्रं तु तच्चूर्णं सर्पिषा सह योजयेत्।
माससात्र प्रयोगेण मतिमान्-जायते नरः ॥
मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलित वर्जितः ॥५३॥

(५) जो मनुष्य नित्य भृंगराजके पञ्चाङ्गका स्वरस एक मास पर्यन्त पान करता है और केवल दुग्धाहारपर रहता है वह बल-वर्णयुक्त शतायु प्राप्त करता है।

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिनेभृङ्गरजः समुत्थम्।
क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ता समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति ॥५४॥

इन रसायन द्रव्योंके सेवनसे शरीर निर्मल रहता है यदि वीर्य वृद्धिकी आवश्यकता प्रतीत हो तो नीचे लिखे योग प्रकृतिके अनुसार सेवन करें।

(१) हरे आंवलेकी गुठली निकालकर तथा सुखाकर चूर्ण कर लें। बादमें उसमें आंवलेके ही रसकी २१ भावना देकर रख लें फिर शक्कर घृत और मधु रुचिके अनुसार मिलाकर १ तोलेकी मात्रामें सेवनकर कवोष्ण दूध पियें। इसके निरन्तर प्रयोग करनेसे ८० वर्षका वृद्ध भी युवा पुरुषकी तरह शक्तिशाली होता है।

एवमामलकीचूर्णं स्वरसेनैव भावितम्।
शर्करा मधुसर्पिर्भियुक्तं लीढ्वा पयः पिबेत्॥
एतेनाशीति वर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति॥५५॥

(२) इसी प्रकार विदारीकन्दका ताजा कल्क बनाकर घृत दूधके साथ सेवन करनेसे वृद्ध पुरुष भी तरुणों जैसी शक्ति प्राप्त करता है।

विदारीकन्द कल्कं तु घृतेन पयसा नरः।
उदुम्बर समं खादन् वृद्धोऽपि तरुणायते॥५६॥

(३) कौंचके बीजका चूर्ण और तालमखानेका चूर्ण मिलाकर एक तोला लें। मधु और शक्कर इच्छानुसार मिलाकर धारोष्ण दूधके साथ सेवन करनेसे अक्षय वीर्य प्राप्त होता है।

स्वयं गुप्तेक्षुरकयोर्बीजं समधुशर्करम्।
धारोष्णेन नरःपीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत्॥५७॥

(४) एक तोला मुलेठीका चूर्ण घृत मधुके साथ सेवनकर दूधका पान करे तो नित्य स्त्री संग करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है।

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्र समन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ॥५८॥

(५) गोखरू, तालमखाना, शतावर, कौंचके बीज, नागबला (गंगेरन), और अति बला (कंघी) की जड़को चूर्णकर बलाबल समझकर दूधके साथ रात्रिमें सेवन करनेसे अनेक स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी शक्ति प्राप्त होती है।

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली वानरि नागबलातिबला च।
चूर्णमिदं पयसा निशिपेयं यस्यगृहे प्रमदा शतमस्ति ॥५९॥

शरीरमें वीर्य वृद्धिकर काम सेवनसे ही आनन्द नहीं मिलता है आंख, नाक, कान और मस्तिष्ककी शक्ति भी उत्तम रहनेसे आनन्दातिरेक प्राप्त होता है। इसके लिये कुछ विशिष्ट प्रयोग लिखे जाते हैं। प्रातःकाल सूर्योदयके समय नासासे तीन चुल्लू जलपीने से बुद्धि निर्मल रहती है, नेत्र ज्योति बढ़ती है; चेहरेपर झुर्रियां नहीं पड़ती और बाल भी शीघ्र सफेद नहीं होते हैं।

विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं-
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो
वलिपलित विहीनःसर्वरोगैर्विमुक्तः ॥६०॥
(पीतव्यं नासया नीरं प्रसृत्तित्रयमस्त्रया)

यदि नासासे जल पीने का अभ्यास न हो सके तो दिनमें दो तीनबार शीतल जलका नस्य ले इससे भी अच्छा लाभ होता है। पद्यमें यद्यपि प्रातःकाल ही नस्य लेनेका विधान है, परन्तु मेरा

अनुभव यह है कि दो तीन बार जलका नस्य लेना अधिक हित कारक है।

व्यङ्गवली पलितघ्नं पीनसकासशोथहरम्।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टि सञ्जननम् ॥६१॥

प्रातःकालका जलपान और नस्य नीचे लिखे रोगोंसे पीड़ित हो तो न करें।

स्नेहपान करनेपर, व्रणसे पीड़ित होनेपर, वमन, नस्य आदिसे शुद्धि की गई हो, वायुसे उदरका आध्मान हो, या स्तिमितोदर हो, हिक्काका रोग हो, या कफ वात रोग हो तो जलका प्रयोग न करें।

स्नेहपीते क्षते शुद्धा वाध्माने स्तिमितोदरे।
हिक्कायां कफवातोत्थे व्याधौ तद्वारि वारयेत् ॥६२॥

इस प्रकारके उपचारके साथ—

बादामकी गिरी १० तोला, सौंफकी गिरी १० तोला

खूब कूटकर बारीक चूर्णकर २० तोला मिश्रीका चूरा मिलाकर ४० दिन रात्रिमें सोते समय १ तोला नित्य सेवन करनेसे नेत्रकी ज्योति बढ़ती है। इस दवाके सेवन करते समय जल पान न करें। घंटे दो घंटेके बाद जल पी सकते हैं।

आंखोंकी ज्योति बढ़ानेके लिये दिनमें ३ बार शीतल जल मुखमें भरकर आंखोंपर छींटे मारनेका अभ्यास करना चाहिये। इससे नेत्रमें किसी प्रकारका विकार नहीं होता है।

शीतेन पूरितमुखः प्रतिवासरं यो
वारत्रयं नयनयोर्द्वितयं जलेन।
आसिञ्चति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षि
रोगव्यथा विधुरतां लभते मनुष्यः ॥६३॥

आंखके बाद दातोंका साफ रखना भी परमावश्यक है। निम्बू को आधा काटकर दाँतोंपर रगड़नेसे दाँत साफ रहते हैं और दृढ़ होते हैं। दाँतोंके बाहर और भीतर दोनों तरफसे रगड़नेसे सफाई अच्छी होती है। कभी कभी नीम, मोलसिरी और बबूलकी छाल को सुखाकर मंजन करनेसे पायरिया (दन्त पूय) रोग चला जाता है। सरसोंका तैल और नमक मिलाकर मलनेसे भी दांत अच्छे रहते हैं।

चेहरेको सुन्दर रखनेके लिये दूध, दही, निम्बू, सन्तरा, बादाम या मसूरकी दालका उबटना स्नानके पूर्व करना अच्छा है। मनुष्य साफ सुथरा सुवेष रहे तो जीवनपर अच्छा प्रभाव पड़ता है। मन प्रसन्न रहता है मनके प्रसन्न रहनेसे शरीरमें कामकी स्फुरणा होती है।

शरीरे जायते नित्यं देहिनः सुरत स्पृहा।
अव्यवायान्मेह मेदो वृद्धिः शिथिलता तनोः ॥६४॥

मैथुन नहीं करनेसे प्रमेह, मेदोवृद्धि और शरीरमें शिथिलता होती है। इस लिये नियमित समयपर शास्त्राज्ञाके अनुसार एकान्तमें सुरक्षित स्थानपर जहाँ स्वच्छ वायुका अच्छा प्रवाह हो और सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित स्थान हो वहाँपर स्त्री प्रसंग करनेसे सुख मिलता है।

विहारं भार्यया कुर्यात् देशेऽतिशय संवृते।
रम्येश्राव्याङ्गना गानैःसुगन्धे सुखमारुते ॥६५॥

जहाँ गुरुजनोंकी सन्निधि हो या खुला स्थान हो या जिस स्थानपर स्त्रीके साथ वार्तालाप करनेसे लज्जाका भाव पैदा हो और कष्ट कारक वार्तालाप चलता हो वहाँ स्त्रीके साथ रमण न करें।

देशे गुरुजनासन्ने विवृतेऽचि त्रपा करे।
श्रूयमाणे व्यथा हेतु वचनें न रमेत ना॥६६॥

स्त्रियों की प्राचीन विद्वानोंने तीन अवस्थाएं मानी हैं अतः इनका विचार कर स्त्री संग करना उचित है।

बालेति गीयते नारी यावद्वर्षाणि षोडश।
ततस्तु तरुणी ज्ञेया द्वात्रिंशद्वत्सरावधि।
वृद्धा तत्परतोज्ञेया सुरतोत्सव वर्जिता ॥६७॥

सोलह वर्षकी युवती 'बाला' कहलाती है ३२ वर्षतक स्त्री तरुणी मानी जाती है और उसके बाद वृद्धा समझी जाती है, क्योंकि बाल बच्चे हो जानेसे उनमें कामाभिलाषा कम हो जाती है, भगवान्ने जिनको अनेक स्त्रियाँ रखनेकी शक्ति दी हो, वे ऋतुके अनुसार सब आयु वाली स्त्रियोंका उपभोगकर आनन्द लें।

निदाघ शरदोर्बाला हिता विषयिणां मता।
तरुणी शीत समये प्रौढा वर्षावसन्तयोः ॥६८॥

विषयी पुरुषोंके लिये ग्रीष्म और शरद ऋतुमें बाला (सोलह वर्षकी युवती) उपभोगके लिये उपयुक्त है। शीतकालमें तरुणी उत्तम है और वर्षा तथा वसन्त ऋतुमें प्रौढ़ा (४० वर्षकी आयुवाली) स्त्री उपभोग्या है पर। यह स्मरण रहे—

नित्यं बाला सेव्यमाना नित्यं वर्धयते बलम्।
तरुणी ह्रासयेच्छक्तिं प्रौढोद्भावयतेजराम् ॥६९॥

नित्य बाला स्त्रीके संगसे बल बढ़ता है तरुणीके प्रसंगसे शक्ति की हानि होती है और प्रौढाके संसर्गसे वृद्धता उत्पन्न होती है।❀

❀ आषोडशाद्भवेद् बाला तरुणीत्रिंशक मता।
पंच पंचाशता प्रौढा भवेद् वृद्धा ततः परम्॥

वृद्ध पुरुष तरुणीस्त्रीके समागमसे तरुणता प्राप्त करता है और तरुण पुरुष अधिक आयु वाली स्त्रीके संपर्क से बूढा हो जाता है।

वृद्धोऽपितरुणीं गत्वा तरुणत्वमवाप्नुयात् ।
वयोऽधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः स्थविरायते ॥७०॥

स्त्रियोंके साथ रमण करनेके कुछ नियम हैं, उनके पालन करनेसे शरीरका बल न्यून नहीं होता है। रजस्वला स्त्रीके साथ चार दिनके बीचके समयमें गमन करनेसे नेत्र ज्योतिकी कमी होती है, आयुष्य घटती है शरीरकी कान्ति कम हो जाती है। एवं अधर्म होता है।

रजस्वलां गतवतो नरस्यासंयतात्मनः ।
दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्चततो भवेत् ॥७१॥

पूर्वोक्त वाजीकर औषधियोंका खूब सेवन कर बलप्राप्ति पूर्वक हेमन्त ऋतुमें यथेच्छ स्त्री संग करें एवं शिशिर ऋतुमें यथेष्ट मैथुन कर सकता है।

सेवेत कामतः कामं बलाद्वाजीकृतो हिमे ।
प्रकामं तु निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे ॥७२॥

वसन्त ऋतुमें तीन-तीन दिनके अन्तरसे और ग्रीष्म तथा वर्षा में १५ पन्द्रह दिनोंके अन्तरसे स्त्री संग करे अन्य ऋतुओंमें साधारण तया तीन-तीन दिनके अन्तरालसे स्त्री प्रसंग करे।

त्र्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षानिदाघयोः ।
त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्हि समीयात् प्रमदां नरः ॥७३॥

जो मनुष्य स्त्रियोंमें संयम रख कर अल्प मैथुन करते हैं, वे

दीर्घायु होते हैं। उन्हें बुढापा कम सताता है और शरीर सुदृढ सुन्दर बना रहता है।

आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः ।
स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ।।७४।।

शीतकालमें रात्रिमें स्त्री संग करे। ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नमें जहाँ शीतल सुगन्ध समीर चलता हो। वसन्त ऋतुमें दिन रातमें जो अवकाशका समय मिले, उसी समय आनन्द लाभ लें। वर्षा ऋतु में वर्षा हो रही हो, बादल गडगडा रहे हों, और बिजली चमकती हो ऐसे समयमें स्त्री मिलन सुखद होता है। शरद ऋतुमें चाँदनी रातमें अच्छा रहता है।

शीते रात्रौ दिवा ग्रीष्मे वसन्ते च दिवा निशि ।
वर्षासु वारिद्ध्वाने शरत्सु सरसः स्मरः ।।७५।।

सन्ध्याके समय अथवा पर्वके दिन गोधूलीकी बेलामें और मध्य दिन और मध्य रात्रिमें स्त्री प्रसंग न करें।

उपेयात् पुरुषोनारीं सन्ध्ययोर्न च पर्वसु ।
गोसर्गे चार्ध रात्रे च तथा मध्य दिनेऽपिच ॥

जिस पुरुषने अधिक भोजन किया हो, जो किसी कार्यमें व्यग्र हो, भूखा हो, प्यासा हो, शरीरके किसी अंगमें पीडित हो, किसी वेगसे बाधित हो, रोगी हो, बालक और वृद्ध हो, पुरुषको ऐसी दशा में मैथुन नहीं करना चाहिये।

अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यथाङ्गः पिपासितः ।
बालोवृद्धोऽन्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ।।७७।।

स्त्रीके पास जाते समय पुरुषको स्नान कर चन्दन, इतर लगा

कर, सुगन्धित पुष्पोंकी माला धारण कर उत्तम शक्ति प्रद भोजन कर, सुन्दर वेष भूषा बनाकर, ताम्बूलसे मुख सुवासित कर अनुरक्त पत्नीके साथ केवल पुत्र कामना पूर्ण करनेके लिये सुन्दर सुखद बिछौनेपर संगम करें।

स्नातश्चन्दन लिप्ताङ्गः सुगन्धः सुमनोन्वितः।
भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेपः समलंकृतः ॥७७॥
ताम्बूलवदनः पत्न्यामनुरक्तोऽधिक स्मरः।
पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे ॥७८॥

इसी प्रकार स्त्रीको भी तैयार करें। अपनेसे गुणधर्म वाली, कुलीन, रूपवती, प्रसन्न चित्त वाली, कामकला कोविद स्त्रीके साथ वाजीकरण औषधियोंसे तृप्त होकर युक्तिसे प्रसन्नता पूर्वक रमण करें।

भार्यां रूपगुणोपेतां तुल्यशीलां कुलोद्भवाम्।
अतिकामोऽभिकामां तु हृष्टो हृष्टामलंकृताम् ॥७९॥
सेवेत प्रमदां युक्त्या वाजीकरण बृंहितः ॥

यह सदा स्मरण रहे अनुरक्त स्त्रीके साथ ही संभोग करना चाहिये। पुरुष अत्यासक्त हो जाता है तो स्त्रियाँ उसे पराजित कर देती हैं। विरक्त स्त्रीको सदा बचाना चाहिये। स्त्रियोंमें अधिक अनुराग नहीं करना चाहिए।

स्त्रीषु न रागः कार्यो रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति।
रक्तैव हि रन्तव्या विरक्त भावा तु हातव्याः ॥८०॥

क्योंकि स्त्रियाँ पुरुषोंसे तृप्त नहीं होती हैं। जैसे ईंधनसे अग्नि की कभी शान्ति नहीं होती है, न नदियोंके प्रवाहसे समुद्र भरता है

और न काल समस्त संसारको भक्षण कर जाने पर भी तृप्त होता है; इसी प्रकार स्त्रियाँ भी पुरुषोंके संभोगसे तृप्त नहीं होती हैं।

नाग्निस्तृप्यतिकाष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥८१॥

स्त्रियोंके दर्शनसे चित्त चुरालिया जाता है, स्पर्शसे बलका ह्रास होता है और संभोग करनेसे वीर्यका नाश होता है। इसलिये स्त्रियोंके संपर्कको जहाँ तक संभव हो बचाना चाहिये। अन्यथा वे मनुष्योंकी जीवन शक्तिको नाश करने वाली राक्षसियां सिद्ध होंगी।

दर्शनाद्धरते चित्तं स्पर्शनाद्धरते बलम्।
संभोगाद्धरते वीर्यं नारी प्रत्यक्ष राक्षसी ॥८२॥

प्राचीनोंका मत है कि स्त्रियां देखनेसे, भाषणसे, विलास करनेसे हँसनेसे या केलिकरनेसे यद्वा स्मरण करने ही से मानसिक विकार उत्पन्न करती हैं।

सन्ति विलोकन, भाषण, विलास, परिहास, केलिपरिरंभाः।
स्मरणमपि कामिनीनामलमिह मनसो विकाराय ॥८३॥

बाले तवाधर सुधारस पानकाले
चेतो मदीयमभिवाञ्छति शेष भावम्।
आलिङ्गने तव विलोचन मौनभाव-
माखण्डलत्वमखिलाङ्ग निरीक्षमाणे ॥८४॥

(अर्थ स्पष्टम्)

इधर स्त्री स्वभावकी दुर्बलता यह है कि जब वह काम पीड़ित होती है, तब किसी भी पुरुषको स्वीकार कर लेती है। न रूप देखती है और न उम्रका खयाल करती है केवल काम तृप्ति करने वाला पुरुष होना चाहिये।

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः ।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येवभुञ्जते ॥८५॥

दिलदार पुरुषको देखकर स्त्रीकी योनि द्रवित हो जाती है ।

दृष्ट्वैव पुरुषं हृद्यं योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥८६॥

स्त्रियाँ पुरुषोंको अवस्था विशेषसे तीन श्रेणियोंमें विभक्त करती हैं, यह भी ध्यानमें रखना चाहिये जिस युवाकी मूंछे न निकली हों उसे खूब मिश्री मिले हुए दुग्ध पानकी तरह संभोग योग्य समझती हैं, जिसके मूंछे निकल आई हों उसे नमक मिले हुये तक्रके समान रुचिकर और ग्राह्य समझती हैं, और जिसके श्वेत मूंछें हो गई हैं उसे तो गूगलके काथके समान त्याज्य समझती हैं ।

अनङ्कुरित कूर्चकः स तु सितोपलाढ्यं पयः
स एव घृत कूर्चकः सलवणाम्बुतक्रोपमः ।
स एव सित कूर्चकः क्वथित गुग्गुलूद्वेगकृतः
भवन्ति हरिणी दृशां प्रियतमेषु भावास्त्रयः ॥८७॥

पर भगवान् ने स्त्रियोंकी ऐसी जंजीर बनाई है कि पुरुष लोहे की जंजीरसे मुक्त हो जाते हैं, किन्तु स्त्रीके स्नेह पाशमें बँधा हुवा छुटकारा नहीं पा सकता ।

नरस्य बन्धनार्थाय शृंखला स्त्री प्रकीर्तिता ।
लोह बद्धोऽपि मुच्येत स्त्री बद्धोनैव मुच्यते ॥८८॥

प्रियाके प्रेम जालमें फँसा हुआ पुरुष अत्यन्त काम सेवन करने से वीर्यका नाश कर देता है । अतः स्मरण रहे आहारका अन्तिम-सार वीर्य है । इसे सुरक्षित रखनेसे ही शरीर स्वस्थ रहता है । इस

के क्षयसे अनेक रोग पैदा होते हैं और क्षय रोगसे ग्रस्त होकर मनुष्य मर भी जाता है।

मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात् ॥८९॥

की कहावत चरितार्थ होती है। चरकका यह निम्न उपदेश सदा स्मरणीय है—

आहारस्य परंधाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयोह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा प्रयच्छति ॥९०॥

यह भी ध्यानमें रहे कि भोजनके बाद बाईं करवटसे सोने वाला दो बार ही भोजन करने वाला, दिन रातमें दो बार मलत्याग करने वाला, छः बार मूत्र त्याग करने वाला एवं अल्प मैथुन करने वाला पुरुष शतायु होता है।

वामशायी द्विभुञ्जानो षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
स्वल्प मैथुनकारी च शतंवर्षाणि जीवति ॥९१॥

ऐसे नियमोंके रहते भी अनेक बार मनुष्य परिस्थितिके जालमें फँसकर उचितानुचितका ध्यान भूल जाता है। पर स्त्री गमन जैसा पाप कर बैठता है। उससे बच कर जितेन्द्रिय बनना चाहिये। अपनी पत्नी भी यदि एकान्तमें कामार्त होकर स्वयं आ जाय तो उसका उपभोग कर सकते हैं। वह त्याज्य नहीं होती।

यदि स्याद्भवने दैवात् कामिनी समुपस्थिता।
स्वयंरहसि कामार्त्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियैः ॥९२॥

किसी कविने कहा है कि लेखनी, पुस्तक और कामिनी स्वयं आवे वही आनन्द दायक है। बलसे आकृष्ट करनेपर तो वे सरस होनेपर भी विरस हो जाती हैं।

लेखनी पुस्तिका दारा स्वयमेवागता वरा ।
बलादाकृष्यमाणा चेत् सरसा विरसा भवेत् ।।६३।।

कई बार मनुष्यको मनोहारिणी स्त्रीको देखते ही नशा-सा हो जाता है प्राचीन समयके पंडितोंने भी तीन प्रकारकी मदिरा मानी है प्रमदा, मदिरा और लक्ष्मी। प्रमदा स्त्रीको देखकर मदिराको पीकर और लक्ष्मीको संचित कर मनुष्य उन्मत्त हो जाता है।

प्रमदा मदिरा लक्ष्मीर्विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।
दृष्टैवोन्मादयत्यन्या पीताऽन्या चातिसंचयात् ।।६४।।

किसी दुर्दैवके कारण स्त्री परभुक्ता हो जाय तो भी वह त्याज्य नहीं है। बलात्कारसे या चोरोंके फन्देमें फंसकर परोपभुक्त होने मात्रसे उसके त्यागका विधान नहीं है।

बलात्कारोपभुक्ता या चौर हस्तगतापि वा ।
नत्याज्या दयिता नारी ना सां त्यागोविधीयते ।।६५।।

क्योंकि दुनियामें जितनी इच्छायें हैं उनमें कांचन और कामिनी की इच्छा ही सबसे प्रधान हैं इसलिये इस विषयमें अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

इच्छा समूह मध्ये तु द्वयोरिच्छा प्रधानतः ।
काञ्चनं कामिनीं चेच्छन्नात्रकार्या विचारणा ।।६६।।

पर यह सदा स्मरण रहे कि कामिनी, कांचन, हाथी, घोड़े, मित्र और दास-दासी सब आंखोंके मिच जाने पर काम नहीं आते हैं।

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवा प्रणति नम्र गिराश्च भृत्याः ।

गर्जन्ति दन्ति निवहास्तरलास्तुरङ्गाः
संमीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति ॥६७॥

संसारका यह अटूट नियम है, इसलिये चिन्ता शोकसे रहित होकर जीवन यापन करनेका यत्न करें। चिन्तासे, वृद्धतासे, रोग से, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, उपवासकी अधिकतासे और स्त्रियोंके साथ अति रमण करनेसे वीर्यका क्षय होता है।

चिन्तया, जरया, शुक्रं व्याधिभिः कर्म कर्षणात्।
क्षयंगच्छत्यनशनात् स्त्रीणां चातिनिषेवणात् ॥६८॥

वीर्य क्षय होनेके लक्षण उपस्थित हो तो खूब दूध घृतका उपयोग करें।

सौभाग्यपुष्टिबलशुक्र विवर्धनानि-
किं सन्ति नो भुवि बहूनि रसायनानि।
कन्दर्पवर्धनपरस्तु सिताज्य युक्ताद्-
दुग्धादृतेन मम कोऽपि मम प्रयोगः ॥६९॥

यदि अग्निमांद्य हो, घृत सहजमें न पचे, तो उष्ण दूध २०तोला, शक्कर १ तोला, छोटी पीपलका चूर्ण दो रत्ती, मधु १ तोला, घृत छः माशा देकर खूब हिलाकर पी लिया करें।

शृतं पयः शर्करा च पिप्पल्यो मधुसर्पिषा।
पंचसारमिदं प्रोक्तं रसायनमनुत्तमम् ॥१००॥

यदि किसी कारण इस दूधका पाचन न हो तो पंचामृतका सेवन करें।

दूध २०तोला, दधि १०तोला, शक्कर ५ तोला, घृत २।। तोला, मधु १। तोला मिलाकर खूब मथनीसे घोटकर रुचिके अनुसार जल मिला कर पी लिया करें।

क्षीरं दधि सितासर्पिर्मधु पञ्चामृतं स्मृतम्।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं तृड् दाहादि विनाशनम् ॥१०१॥

दूध दही भी अनुकूल न पडे एवं मांस खानेमें कोई बाधा न हो तो नित्य मांस रसका सेवन करें।

व्यायाम नित्याः स्त्री नित्या, मद्य नित्याश्च, ये नराः।
नित्यं मांसरसाहारा दुर्बलाःस्युर्न चातुराः ॥१०२॥

स्त्री प्रसंगके बाद यदि पुरुष थोड़ा सा विश्राम करके स्नान करले, शीतल चन्दनादिका लेप लगा ले, शीतल मन्द समीरका सेवन करे, उत्तम शक्करके बने हुए पकवानका उपयोग करे, शीतल जलका पान करे, दूध पीये, मांसका रस ले, माष-मूंगका घृत मिला यूष ले, वा उत्तम मद्यका सेवन करे और तदनन्तर निद्रा सेवन करे तो शरीरमें फिर शक्तिका संचार हो जाता है। वीर्यकी क्षतिकी पूर्ति हो जाती है और शरीर तरो ताजा हो जाता है।

स्नानानुलेपन हिमाऽनिल खंड खाद्य-
शीताम्बुदुग्धरस यूष सुरा प्रसन्नाः।
सेवेत चानुशयनं विरतौ रतस्य-
तस्यैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम ॥१०३॥

ऋतु अनुसार सुखका योग इस प्रकार मिलता रहे तब शरीर स्वस्थ रहता है। हेमन्त ऋतुमें खूब पौष्टिक पदार्थोंका सेवन कर

स्त्रियोंके स्तनोंकी उष्माका सेवन करें, शिशिर ऋतुमें खिले हुये अङ्गारोंकी बिना धुएं की अंगीठोका उपयोग करें, वसन्त ऋतुमें वनोंमें भ्रमण कर वन राजीका अवलोकन करें "वसन्ते भ्रमणं पथ्यं" ग्रीष्म कालमें खूब जल क्रीडा करें, वर्षा ऋतुमें दुमंजिले मकानमें निवास करें, नमीसे बचें। शरद् ऋतुमें खूब गोदुग्धका पान करें। एवं सुखका जीवन बितावें। तथा शत्रुओंका नाश इस प्रकार होता रहनेसे भी सुखमें वृद्धि होती है।

जिस प्रकार हेमन्तमें दिनका, शिशिरमें कमलका, वसन्तमें लज्जाका, ग्रीष्ममें रात्रिका, वर्षामें धूलिका, शरदमें कीचड़का नाश हो जाता है।

हिम-शिशिर-वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शरत्सु
स्तन-तपन-वना ऽ म्भो-हर्म्य-गोक्षीरपानैः।
सुखमनुभवराजन् शत्रवो यान्तुनाशम्
दिवस-कमल-लज्जा--शर्वरी-रेणु-पङ्कः ॥१०४॥

संसारके आठ भोग हैं उन्हें किसी तरह पूरा करके मनुष्यको संतुष्ट रहना चाहिये—

सुगन्ध, स्त्री, उत्तम वस्त्र, गायन, तांबूल भक्षण, पौष्टिक भोजन, साधारण आभूषण, आवश्यकतानुसार सवारी।

सुगन्धो वनिता, वस्त्रं, गीतं, ताम्बूलभोजनं।
भूषणं वाहनं चेति भोगाष्टकमुदाहृतम् ॥१०५॥

यदि इन भोगोंके भोगनेसे रोगहो जावे तो नीचे लिखे सिद्धान्तके अनुसार विज्ञ वैद्यके परामर्शसे स्वास्थ्य लाभ करें भर्तृहरिने कहा है।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयम्
मानं दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे तरुण्या भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥१०६॥

वैराग्य सबको नहीं होता, इसलिये आकस्मिक भूलोंसे जो रोग पैदा हों उन्हें समझ कर साधारण उपायोंसे हो जहाँ तक संभव हो दूर करें ।

कफके रोग जुखाम, खांसी आदिको रूक्षोष्ण चिकित्सासे दूर करें, पित्तके दाहादि विकारोंको मधुर शीतल द्रव्यों और उपचारोंसे वशमें करें, वातके रोग शूल, कंप, शैथिल्य आदिको स्निग्धोष्ण क्रियाओंसे शमन कर स्वास्थ्य लाभ करें । यदि शरीरमें क्षय रोगके लक्षण नजर आवें तो मांस रसका सेवन करें ।

कफोपचारे रूक्षोष्णं, पित्ते मधुर शीतलम् ।
वातप्रकोपे स्निग्धोष्णं क्षये मांस रसः स्मृतः ॥१०७॥

इस उपचारसे शमन न हो तो नीचे लिखा उपचार करें । कफके रोगोंको दूर करनेके लिये वमन करावें । वातके दोषोंको दूर करनेके लिये विविध प्रकारके वातनाशक तैलोंका मर्दन करावें । पित्तकी उष्माकी शान्तिके लिये पूर्ण विश्राम कर शयन करें । कदाचित् ज्वर हो जाय तो लंघन करें ।

वमनं कफनाशाय वातनाशाय मर्दनम् ।
शयनं पित्तनाशाय ज्वरनाशाय लंघनम् ॥१०८॥

साधारण तथा जीवनी शक्तिको संतुलित रखनेके लिये शरद् ऋतुमें वर्षा जलका सेवन करें, माघ पौषके महीनोंमें अच्छे पौष्टिक

भोज्य पदार्थोंका सेवन करें और ज्येष्ठ अषाढ़के दिनोंमें खूब शयन करें।

अम्भः शरदि यत्पीतं भुक्तं यत् मार्गपौषयोः।
यज्ज्येष्ठाषाढ़योः सुप्तं तेन जीवन्ति मानवाः ॥१०६॥

जीवनका स्वर्गीय सुख ही वास्तविक सुख है। स्वर्गीय प्राणियों की तरह सदा प्रसन्न रहना, मधुर हितकर वाणीका उपयोग करना, सुशीलताका सदा आचरण रखना, परिवारके साथ सदा मित्र भाव रखना, सत्पुरुषोंके साथ संपर्क बनाए रखना और कुलहीन पुरुषोंके साथ सम्बन्ध नहीं रखना इस प्रकारका आचरण करना चाहिए।

सदा प्रसन्नं मुखमिष्ट वाणी-
सुशीलता च स्वजनेषु सख्यम्।
सतां प्रसंगः कुलहीनहानं,
चिह्नानि देहे त्रिदिवस्थितानाम् ॥११०॥

इसी प्रकार नारकीय जीवोंके लक्षणोंको नजदीक नहीं आने देना चाहिये। नारकीय जीव अत्यन्त क्रोधी, कटुभाषी, दरिद्र, परिवार द्वेषी, नीच पुरुषोंका संग और हीनकुलकी सेवा करने वाले होते हैं।

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा चिह्नानि देहे नरकस्थितानाम्॥

संसारमें १० चीजें अत्यन्त चंचल हैं। इनका उपयोग समझकर करें। मन, भ्रमर, मेघ (बादल), मानिनी (स्त्री), काम, वायु, लक्ष्मी, मद्य, बन्दर (मर्कट) और मत्स्य!

मनो मधुकरो मेघो मानिनी मदनो मरुत् ।
मा मदो मर्कटो मत्स्यो मकारा दश चंचलाः ॥११२॥

नीचे लिखे पांचजकारोंकी पूर्ति करना संभव नहीं है अतः युक्तिसे कार्य संपादन करें। जामाता (जवाईं), जठर (उदर), जाया (पत्नी), जात वेदस (अग्नि), जलाशय (तालाब समुद्र आदि)।

जामाता जठरं जाया जातवेदा जलाशयाः ।
पूरिताः नैव पूर्यन्ते जकारा पंच दुर्लभाः ॥११३॥

मनुष्यको संसारके कार्य संचालनके लिये मित्रोंकी आवश्यकता होती है। अतः बहुत समझ बूझकर मित्र बनाना चाहिये। मित्र वही है जो रोग शोकको दूर करनेमें सहायता करे, भय प्राप्त होने पर रक्षा करे और पूर्ण विश्वासपात्र एवं प्रेमका सच्चा हो।

शोकारातिभयत्राणं प्रीति विश्रम्भभाजनम् ।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥११४॥

संसारमें तीन ही पुरुष प्रकृतिसे हितकारक होते हैं शेष व्यक्ति तो हितकामना किसी कारणसे करते हैं।

माता मित्रं पिता चेति स्वभावात् त्रितयं हितम् ।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हित बुद्धयः ॥११५॥

संसारमें कई ऐसे अवसर हैं जिनकी उपस्थितिपर बन्धुत्वका व्यवहार करना उचित है। विशेषकर किसी उत्सवके समय किसी संकटके समय, दुर्भिक्ष पड़नेपर, राष्ट्रके विप्लवके अवसरपर, राजद्वार पर या श्मशानमें भाईचारे का व्यवहार करें।

उत्सवे व्यसनेचैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥११६॥

भगवान्‌की कृपा ही से मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महान्‌पुरुष का आश्रय प्राप्त होता है। अतः परम प्रयत्नसे इसे सुरक्षित रख कर इसका लाभ प्राप्त करें।

दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥११७॥

मनुष्यत्वकी रक्षाके लिये यश प्राप्त करना चाहिये, जिससे अपने नामकी ख्याति हो सके। उत्तम पुरुष अपनी ही योग्यतासे विख्यात होते हैं, मध्यम पुरुष अपने पिताके नाम से ख्याति पाते हैं, अधम पुरुष मामाके नामसे प्रसिद्धि पाते हैं अत्यन्त अधम पुरुष अपनी बहिनके नामसे मशहूर होते हैं।

उत्तमस्तु स्वयं ख्यातः पितु ख्यातस्तु मध्यमः ।
अधमो मातुलात्ख्यातः स्वसुः ख्यातोऽधमाधमः ॥११८॥

संसारमें जिसकी कीर्ति है, वही जीवित पुरुष है। अन्यथा चित्त सदा चलायमान रहता है, धनकी भी यही दशा है, जीवन और यौवन भी अस्थिर हैं। केवल उनकी रक्षा करनेमें ही जीवन की सार्थकता नहीं है।

चलंचित्तं चलंवित्तं चले जीवनयौवने ।
चलाचलमिदं सर्वं कीर्तिर्यस्य स जीवति ॥११९॥

वे रससिद्ध कवीश्वर सदा जीवित हैं जिनके यशरूपी शरीरको जरा और मरणका भय नहीं है।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ॥१२०॥

कीर्ति परंपराकी रक्षा उत्तम संतानसे होती है इसलिये महाभारतमें लिखा है कि निरुत्साह, निरानन्द, निर्वीर्य और शत्रुको आनन्द देने वाले पुत्रको कोई भी माता पैदा न करें।

निरुत्साहं निरानन्दं निर्वीर्यं चारिनन्दनं ।
मा स्म सीमन्तिनी काचित् जनयेत् पुत्रमीदृशम्॥१२१॥

इसलिये पुत्रकी शिक्षा दीक्षा बड़ी सावधानीसे करनी चाहिये। पांच वर्ष तक बालकका खूब लाड़प्यार करे दश वर्ष तक भली प्रकार ताड़नाकर शिक्षित करे एवं १६ वर्षका होनेपर मित्रकी तरह व्यवहार करें।

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते च षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रमिवाचरेत् ॥१२२॥

नित्य बालकोंको बड़ोंका सन्मान करना सिखाना चाहिये बड़ोंका आदर करनेसे आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है।

अभिवादनशीलस्य नित्यंवृद्धोपसेविनः ।
चत्वारितस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥१२३॥

बच्चोंको स्वावलम्बी भी बनाना चाहिये। परतन्त्र पुरुष कभी सुखी नहीं रह सकता। शिवजीने चन्द्रमाको सिरपर धारणकर रक्खा है, फिर भी चन्द्रमा प्रतिदिन घटता जाता है परतन्त्रताके कारण इसी प्रकार मनुष्यभी पराश्रयी होनेसे बढ़ नहीं सकता है।

शिरसा धार्यमाणोऽपि सोमः सौम्येन शंभुना ।
कृशत्वं परमं धत्ते कष्टः खलु पराश्रयः ॥१२४॥

बालकोंको मानव परीक्षण भी सिखाना चाहिये ताकि वे समाजमें व्यक्ति विशेषका उचित सन्मान कर सकें। जैसे सोनेको घिसनेसे, काटनेसे, तपानेसे और पीटनेसे परीक्षाकी जाती है। उसी प्रकार मनुष्य ज्ञान, शील, गुण और कर्मसे जाना जाता है।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निर्घर्षणच्छेदन तापताडनैः ।
तथा चतुर्भिपुरुषः परीक्ष्यते
ज्ञानेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥१२५॥

बच्चोंको संगत करनेका तरीकाभी सिखावें नीच जनोंका संग करनेसे बुद्धिका नाश होता है समान कक्षाके लोगोंके साथ रहनेसे सम बुद्धि रहती है परन्तु विशिष्ट जनोंके साथ रहनेसे बुद्धि में विशिष्टता आती है।

हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥१२६॥

छोटे दर्जेका पुरुष भी सत्पुरुषोंका संग करनेसे चमक उठता है, जैसे काचकी मणि सोनेमें मँढ़ देनेसे मरकत मणिकी तरह चमकने लगती है।

काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम् ।
तथा सत्सन्निधानेन हीनवर्णोऽपिदीप्यते ॥१२७॥

बुरे आदमियोंके साथमें रहनेसे अच्छे मनुष्यकी भी निन्दा होती है। दूध भी यदि बोतलमें भरकर कलालिन (शराब निकालने वाली जातिकी स्त्री) के हाथमें दिया जावे तो उसे दुनियाँ मद्य ही समझेगी।

न स्थातव्यं न गन्तव्यं क्षणमप्यधमैः सह।
पयोऽपि शौण्डिकी हस्ते वारुणी मन्यते जनः॥१२८॥

मूर्ख राजा विद्या वृद्धोंकी सेवा करनेसे अत्यन्त शोभाको प्राप्त होता है जैसे कि जलाशयके पासका वृक्ष सदा हरा भरा रहता है।

अविद्वानपि भूपालो विद्यावृद्धोपसेवया।
परां श्रियमवाप्नोति जलासन्नतरुर्यथा॥१२९॥

यदि सत्संग करनेका अवसर न मिले तो प्रातः सूर्योदयके समय बाग, उपवन, वाटिका या जंगलमें जाकर सूर्य किरणोंका आनन्द ले, पान खावे, महाभारतकी कथा पढ़े, प्रिय भार्याके साथ वार्तालाप करे या हितकारी मित्रके साथ आलाप-संलाप करे। ये बातें नित्य आनन्द देने वाली हैं।

आदित्यस्योदयस्तात! ताम्बूलं भारती कथा।
इष्टाभार्या सुखं मित्रमपूर्वाणि दिने दिने॥१३०॥

यह स्मरण रहे मूर्ख शिष्योंको उपदेश देनेसे, दुष्ट स्त्रीके भरण पोषण करनेसे और दुष्ट पुरुषोंकी कुचालोंसे विद्वानोंको भी दुःख होता है।

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टास्त्री भरणेन च।
द्विषतां सुप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति॥१३१॥

बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि धनका नाश, मनकी वेदना गृहके दुश्चरित्र, ठगा जाना और अपमानकी बातें कहीं प्रकाशित न करें।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहदुश्चरितानि च।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥१३२॥

जिस किसी कारणसे शोक, दुःख या त्रास हो, व्यर्थका परिश्रम करना पड़े, अंगमें अत्यन्त पीड़ा हो, ऐसे कारण को निकालदें चाहे उसमें अपना एक अंगभी अलग करना पड़े।

यन्निमित्तं भवेच्छोको दुःखं वा त्रास एव वा।
आयासो वा यतः शूलं तदेकाङ्गमपित्यजेत् ॥१३३॥

दुष्ट स्त्री, मूर्ख मित्र, ठीक समयपर जवाब देने वाला, आज्ञाभङ्ग (हुक्म अदूली) करने वाला नौकर और जिसमें सांप रहता हो ऐसे घरका निवास ये सब मृत्युके कारण बनते हैं। अतः इनसे दूर रहना ही श्रेयकर है।

दुष्टाभार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥१३४॥

संसारमें कुछ लोग अज्ञानसे नष्ट हो जाते हैं, कुछ प्रमादसे नष्ट होते हैं, कुछ लोग ज्ञानके मदसे नष्ट होते हैं और कुछ लोग नष्ट पुरुषोंकी संगतिसे नष्ट होते हैं।

केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः।
केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैस्तु नाशिताः ॥१३५॥

मनुष्यको अपनी आयसे व्यय कम करना चाहिये। आय व्ययका

समतुलन रखना ही परम धर्म है, कुलीनता है और पण्डिताई है।

अयमेवपरोधर्म इयमेव कुलीनता ।
इदमेव हि पाण्डित्यमायात् स्वल्पतरोव्ययः ॥१३६॥

आपत्कालके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि धनवान् पुरुष अनेक आपत्तियोंसे अपनी रक्षा कर सकते हैं। परन्तु दैव प्रतिकूल होनेपर संचित लक्ष्मी भी नष्ट हो जाती है।

आपदर्थे धनं रक्षेत् श्रीमतां विपदः कुतः ।
कदाचित् कुपिता लक्ष्मीःसंचिताऽपि विनश्यति॥१३७॥

जिस कामके करने से प्रारम्भमें अथवा पीछे कष्ट हो या अनिष्ट हो वह कार्य कदापि न करे ऐसा बुद्धिमान पुरुषोंका मत है।

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्यस्यादशुभं फलम् ।
कर्मणास्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम् ॥१३८॥

आजकलके शिक्षक वंचक हो गये हैं, रक्षक भक्षक हो गये हैं, पोषक शोषक बन गये हैं एवं सेवक, धर्षक (परेशान) करने वाले हो गये हैं। इसलिये बड़ी सावधानीसे कार्य संचालन कर व्यवहार चलावें।

शिक्षकाः वंचका जाता रक्षकाश्चापि भक्षकाः ।
पोषकाः शोषका नूनं सेवकाश्चापि धर्षकाः ॥१३९॥

देखकर पैर रखा करें, छानकर जल पिया करें, वचन सदा सत्य ही बोलने का अभ्यास करें एवं मनमें आगा पीछा समझकर सांसारिक कार्य करें।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतं वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ॥१३९॥

पशुओंमें आपसकी कमजोरीसे एक पशु दूसरेको मारने लगता है। जब कोई जबरदस्त बीचमें आजाता है तो सब शान्त हो जाते हैं। यही दशा मनुष्योंकी है। सेरसे सवा सेर मिलते ही शान्ति हो जाती है।

पशुः पशूनां दौर्बल्यात् कश्चिन्मध्ये वृकायते ।
ससत्यं वृकमासाद्य प्रकृतिं भजते पशुः ॥१४०॥

दुर्जन पुरुष अनेक प्रकारकी सेवा करनेपर भी सज्जनता प्राप्त नहीं कर सकता है। निम्बके वृक्षको दूध घीसे सींचनेपर भी उसमें मीठापन नहीं आ सकता है।

न दुर्जनः सज्जनतामुपैति सर्वैः प्रकारैरपि सेव्यमानः।
भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन न निम्ब वृक्षो मधुरत्वमेति॥१४१॥

संसारमें शिशिर ऋतुमें अग्निका तापना अमृत जैसा आनन्द देता है, प्रिय पुरुषका मिलन भी परम सुखद होता है, राजसंमान पाना भी मनुष्यके गौरव वर्धनके लिये बड़े महत्त्वका है और क्षीर का भोजन भी बड़ा मधुर होता है।

अमृतं शिशिरे वह्निरमृतं प्रियदर्शनम् ।
अमृतं राजसन्मानममृतं क्षीरभोजनम् ॥१४२॥

मृदुता (मुलायिमत)से काम करनेसे कठिनसे कठिन भी काम सरल हो जाता है।

मृदुना दारुणं हन्ति मृदुना हन्त्यदारुणम् ।
नासाध्यंमृदुना किञ्चित् तस्मात्तीच्णतरंमृदु ॥१४३॥

मनुष्यको अपने शत्रुओंसे भय नहीं करना चाहिये, क्योंकि शत्रु जब दोष दर्शन कराता है तो मनुष्य सतर्क रहता है और कार्य करनेकी विलक्षणता प्राप्त होती है, अपने दोषोंको दूर करनेकी चतुराई भी प्राप्त होती है।

जीवन्तु मे शत्रुगणाश्चिरंतनाः
येषां प्रभावाच्चविलक्षणोऽहम् ।
यथा यथाऽमी विकृतिं भजन्ते
तथा तथा ज्ञातृ विचक्षणोऽहम् ॥१४४॥

पराई निन्दा करनेसे, अपने नियत काममें आलस करनेसे और गुणवान् पुरुष द्वेष करनेसे आपत्तियां आती हैं। इसलिये इन कार्योंमें सदा सतर्क रहें।

पर निन्दासु पाण्डित्यं स्वेषुकार्येष्वनुद्यमः ।
प्रद्वेषश्च गुणज्ञेषु पन्थानो ह्यापदां त्रयः ॥१४५॥

अपनी बुद्धिसे विचारकर कार्य करनेसे सुख होता है, विशेषतः गुरु लोगोंके साथ बुद्धि पूर्वक विचारकर कार्य करनेसे लाभ होता है दूसरेकी बुद्धिके भरोसे कार्य करनेसे नाश होता है पर स्त्रीकी बुद्धिसे काम करनेसे तो प्रलय (अनर्थ) ही होता है।

आत्मबुद्धिः सुखायैव गुरु बुद्धिर्विशेषतः ।
परबुद्धिर्विनाशाय स्त्री बुद्धि प्रलयाय हि ॥१४६॥

जिस स्थानमें सम्मान, प्रेम, बन्धुता व विद्या प्राप्ति न हो ऐसे स्थानमें एक दिन भी न ठहरे।

यस्मिन्देशे न संम्मानो न प्रीतिर्न च बांधवाः ।
न च विद्यागमः कश्चित् न तत्र दिवसं वसेत् ॥१४७॥

सेवकोंकी परीक्षा युद्धके समय होती है व्यसन (विपत्ति) में परिवार वालोंकी परीचा होती है, आपत्ति कालमें मित्र परखे जाते हैं और धन चय होने पर स्त्रीकी परीचा होती है ।

जानीयात् समरे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे ।
आपत्कालेषु मित्राणि भार्यां च विभव चये ॥१४८॥

मनुष्य सुखके लिये सदा यत्न करता है परन्तु सुख धर्माचरणके बिना नहीं मिलता है। इस लिये मनुष्यको धर्म परायण होना चाहिये।

सुखार्थास्सर्वभूतानां मताः सर्वाप्रवृत्तयः ।
सुखं च न विना धर्मात् तस्मात् धर्म परोभव॥१४९॥

धर्म वही है जो किसी धर्मका बाधक न हो और सत्यपर अवलम्बित हो। अन्यथा वह धर्म नहीं है उसे तो कुमार्ग कहना चाहिए।

धर्मो यो बाधते धर्मं न स धर्मः कुवर्त्म तत् ।
अविरोधात्तु यो धर्मः सधर्मः सत्यविक्रमः ॥१५०।

मनुमहाराजने धर्मके दश लक्षण नियत किए हैं यथा— धृति (धैर्य रखना), चमा (दूसरोंके अपराधको क्षमा कर देना), दम (इन्द्रियोंका विषयोंसे दमन (निग्रह) करना), अस्तेय (चोरी नहीं करना), शौच (बाहरी और भीतरी पवित्रता रखना), इन्द्रिय निग्रह (दसों इन्द्रियोंको वशमें रखना)※ धी (बुद्धिको निर्मल रखना);

※ ज्ञानेन्द्रियां पांच हैं —श्रोत्र, त्वक् , चक्षु, रसना और घ्राण । कर्मन्द्रियां भी पांच हैं —वाक् , पाणि, पाद, पायु, और उपस्थ । दोनों मिला कर दस इन्द्रियां होती हैं ।

विद्या (धर्म करी और अर्थकरी विद्या सीखना), सत्य (सत्य बोलना), अक्रोध (किसी प्राणि पर क्रोध नहीं करना) ये सार्वभौम धर्मके लक्षण हैं। भूमण्डलके समस्त मानव इनका पालन कर सकते हैं।

धृतिः क्षमादमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधोदशकं धर्मलक्षणम् ॥१५१॥

जो पुरुष धर्मका आचरण करता है वह बल, बुद्धि, विद्या, वैभव आदिमें राजाओं द्वारा प्रशंसित होता है, विद्वान् पुरुष भी उसकी ख्याति करते हैं, सज्जन जन उसको मान देते हैं। वह पुरुष ही नहीं अपितु पुरुषोत्तम कहलाता है।

यं प्रशंसन्ति राजानो यं प्रशंसन्ति वै बुधाः।
सज्जना यं प्रशंसन्ति सज्ञेयः पुरुषोत्तमः ॥१५२॥

विश्वामित्र क्षत्रिय थे और वशिष्ठ ब्राह्मण। ब्रह्म बलसे हारकर विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। विद्या बल बाहु बल पर राज्य करता है यह सत्य इस पद्यमें दिखाया गया है।

धिग्बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्म तेजोबलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदंडेन सर्वास्त्राणि हतानि मे ॥१५३॥

जो मनुष्य संसारमें ऐश्वर्य चाहता है, उसे नीचे लिखे दुर्गुण त्याग देने चाहिये। निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घ-सूत्रता (समयपर काम नहीं करना) समय पर काम करने वाला सदा विजयी होता है।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रातन्द्रा भयं क्रोधमालस्यं दीर्घसूत्रता ॥१५४॥

जो मनुष्य कार्य करनेमें सफलता चाहे, उसे सिंहसे पाठ सीखना चाहिये। सिंह छोटे या बड़े कामको अपनी सारी शक्ति लगा कर करता है।

कार्यं प्रभूतमल्पं वा यो नरः कर्तुमिच्छति।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते ॥१५५॥

छः गुण श्वान (कुत्ता) से सीखने चाहिये। खूब मिले तो खूब खावे और थोड़ा मिले तो थोड़ेमें संतोष करे, खूब सोये और जल्दी सचेत हो। स्वामि भक्त हो और समय पर बीरता दिखावे।

बह्वाशी स्वल्प सन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः ॥१५६॥

तीन गुण गर्दभ (गदहा) से सीखे थके हुए होनेपर भी (स्वामी की आज्ञा मिलने पर) काम करदे, शीत उष्ण समयकी परवाह न करे संतोष पूर्वक जो मिले उसीमें गुजारा करें।

सुश्रान्तोऽपि वहेद्भारं शीतोष्णे न च पश्यति।
सन्तुष्टः चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात् ॥१५७॥

आशाके वशीभूत होकर मांगनेकी लालसासे धनिकोंके पास जब मनुष्य जाता है तो धनिक उससे अनेक प्रकारका खिलवाड़ करते हैं।

आइये, जाइये, कूदिये, उठिये, बातें कीजिये, वे कभी कहते हैं आओ और कभी कहते हैं जाओ। कभी कहते हैं बैठो और कभी कहते हैं उठो। कभी कहते हैं बोलो और कभी कहते हैं चुप रहो। ये हैं उनके कुछ नमूने, जिनसे वे आशाग्रस्तको नाच नचाते रहते हैं।

एहि गच्छ पतोत्तिष्ठ वद मौनं समाचर।
एवमाशाग्रह ग्रस्तैः क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः ॥१५८॥

किसी कविने कहा है कि संसारमें लाभ क्या है? गुणी पुरुषों का संगम। सुख क्या है उत्तम विद्वानोंका संग। हानि क्या है? समय का व्यर्थ खो देना। निपुणता क्या है? धर्म तत्त्व जाननेमें प्रेम। शूरवीर कौन है? जिसकी इन्द्रियां वशमें हों। प्रियतमा स्त्री कौन है? आज्ञा पालन करने वाली रमणी। धन क्या है? विद्या। दुःख क्या है? प्रवासमें जाना। और राज्य सुख क्या है? आज्ञाका पालन।

कोलाभो गुणि संगमः किमु सुखं प्राज्ञैर्नरैस्संगतिः
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्वे रतिः।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा चितानुगा किं धनं
विद्या किं ह्यसुखं प्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥१५६॥

जिस स्थान पर राजाज्ञाका पालन न हो, द्विजोंका अपमान हो और स्त्रीको पतिसे अलग रहना पड़े तो यह विना शस्त्रके ही इन तीनोंको वध करनेकी सजा समझना चाहिये।

आज्ञा भंगोनरेन्द्राणां द्विजानां चावमानना।
पृथक् शय्या च नारीणामशस्त्रविहितोवधः ॥१६०॥

जन्मसे जो अंधा प्राणी है वह पृथिवी आदि तत्त्वोंको क्या जाने? नपुंसक पुरुष स्त्री सुखको क्या समझे? कन्या सत् पुरुष संगमका सुख क्या जाने? बांझ स्त्री प्रसवकी वेदनाको क्या समझे? काक हंसकी गति कैसे चल सकता है? गदहा मृदुध्वनिका उच्चारण कैसे कर सकता है? दरिद्र पुरुष सांसारिक सुखोंका कैसे अनुभव करे। श्वान (कुत्ता) सिंहकेसे पराक्रमको क्या जाने? और मूर्ख पुरुष ज्ञान वालोंके पदको क्या समझे?।

जन्मान्धो न च वेदतत्व विषयं षण्ढः कुतः स्त्रीसुखम्
कन्यासत्पुरुषस्य सौख्यपदवीं वन्ध्या प्रसूतिक्रियाम्।

काको हंसगतिं खरोमृदुरवं सौख्यं दरिद्रैः कथम्
श्वानः सिंह पराक्रमं भुवि कथं मूर्खः पदं ज्ञानिनाम् ॥१६१॥

सैकड़ोंमें एक शूरवीर होता है, हजारोंमें एक पंडित होता है, दश हजारमें एक उत्तम वक्ता होता है। और दानी पुरुष तो कोई होता है या नहीं यह संदिग्ध ही है।

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः।
वाग्मीदश सहस्रेषु दानी भवति वा न वा ॥१६२॥

दुःखमें अधिक दुःखियोंका दुःख देखकर अपना दुःख भूल जाना चाहिए, सुखमें अधिक सुखी पुरुषको देखकर अपने सुखसे इतराना नहीं चाहिये जो पुरुष हर्ष शोकसे अपनेको ऊपर उठाकर कष्टसे बचना है उसे यह श्लोक सदा स्मरण रखना उचित है।

दुःखे दुःखाधिकं पश्येत् सुखे पश्येत् सुखाधिकम्।
एवं तु हर्ष शोकाभ्यां न तापैः परिभूयते ॥१६३॥

दुर्जन पुरुष यदि विद्वान् हो तो भी उससे बचना चाहिये। मणिवाला साँप क्या भयंकर नहीं होता है ?

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ॥१६४॥

घर आदिमें आग लगाने वाला, जहरका प्रयोग करने वाला, शस्त्र उठाकर मारनेको आने वाला, धनको चोरी या डाकेसे छीन लेने वाला, खेतको दखल करने वाला और स्त्रियोंका अपहरण करने वाला ये छः प्रकारके पुरुष आततायी कहलाते हैं। इनको आते देखकर बिना कुछ सोचे समझे ही मार देनेसे कोई दोष नहीं हैं।

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदार हरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥१६५॥
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।
आततायि वधे हन्तुर्दोष कोऽपि न विद्यते ॥१६६॥

पतिके नष्ट होनेपर, मरने पर, परिव्राजक (संन्यासी) हो जाने पर, नपुंसक होनेपर और पतित होनेपर स्त्रियोंको दूसरा पति करने का अधिकार है। ❀

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतितेऽपतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥१६७॥

अन्यायसे कमाया हुआ धन दश वर्ष तक टिकता है। किन्तु ग्यारहवां वर्ष आते ही वह मूल सहित नष्ट हो जाता है।

अन्यायेनार्जितं वित्तं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्तेत्वेकादशे वर्षे समूलं तद्विनश्यति ॥१६८॥

साधारण व्यवहारमें नीचे लिखी नौ बातें गुप्त रखनी आवश्यक हैं अपनी आयु, अपना धन, परिवारके छिद्र, मंत्र, स्त्री संग, औषधि, दान, मान और अपमान।

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्र मैथुन भेषजम् ।
दान मानापमानं च नव गोप्यानि यत्नतः ॥१६९॥

जिस घरमें पति पत्नी संतुष्ट रहते हैं। उस गृहमें सदा आनन्द रहता है।

❀ अपति अर्थात् स्वल्प पतित्व धर्मसे युक्त सगाई किया हुआ व्यक्ति यदि नष्ट हो जाय, ऐसा अर्थ भी श्रेष्ठ है।

यत्र तुष्यति भर्त्रा स्त्री स्त्रिया भर्ता च तुष्यति ।
तत्र वेश्मनि कल्याणं संपद्येत पदे पदे ॥१७०॥

स्त्रियोंको इन छः दुर्गुणोंसे बचाना चाहिये। मद्यपान, दुष्ट पुरुषों का संग, पतिका वियोग, इधर उधर भटकना, अधिक शयन और दूसरेके घरमें निवास ।

पानं दुर्जन संसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगृहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥१७१॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पांच बातें गर्भमें ही निश्चित हो जाती हैं ऐसा विद्वान मानते हैं।

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च ।
पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥१७२॥

नीचे छः प्रकारके पुरुषोंके साथ नमस्कारका सम्बन्ध न रखें। दूर रहने वाला, जलमें क्रीडा करने वाला, दौडने वाला, धनसे गर्वित, क्रोधी और मदसे उन्मत्त ।

दूरस्थं जलमध्यस्थं धावन्तं धनगर्वितम् ।
क्रोधवन्तं मदोन्मत्तं नमस्कारेण नार्चयेत् ॥१७३॥

सदा अपने गुणोंको बढानेका यत्न करे। आडम्बर करनेसे कुछ लाभ नहीं होता है, बिना दूधकी गायको घंटा बजाकर बाजार में बेचनेपर भी कोई खरीदता नहीं है।

गुणेषु यत्नः क्रियतां किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥१७४॥

दुनियामें जितने भी कठिन काम हैं, उनमें सफलता पानेके

लिये प्रकृतिने पुरुषको बुद्धि दी है। उसका सदुपयोग करनेसे अवश्य लाभ होता है उदाहरणार्थ दुस्तर समुद्रको पार करनेके लिये बड़े बड़े जहाज बनाये गये हैं, अन्धकारपर विजय पानेके लिये विविध प्रकारके दीप बनाये गये हैं, हवा बन्द हो जाय तो बिजली और हाथ पंखे उसको उत्पन्न कर उसके अभावको दूर कर देते हैं और मदान्ध हाथियोंके मदको शान्त करनेके लिये अंकुश बना दिया गया है। इस प्रकार ऐसे कोई कार्य नहीं हैं जिनकी विजयके लिये विधि ने उपाय करनेकी चिन्ता न की हो। परन्तु दुर्जन पुरुषों की दुष्ट चित्त वृत्तिपर विजय पानेके लिये ब्रह्माजी भी हतोद्यम हो गये हैं। अर्थात् दुष्ट जनोंकी मनोवृत्तिका परिवर्तन करना असंभव है।

पोतो दुस्तर वारिराशितरणे दीपोऽन्धकारागमे
निर्वाते व्यजनं मदान्ध करिणां दर्पोपशान्त्यै सृणिः।
इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपाय चिन्ताकृतात्
मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धाताऽपि भग्नोद्यमः ॥१७५॥

अनेक पुरुष अपनी वाणीपर अधिकार नहीं रखते। जो मनमें आया वैसा कह दिया इससे अनेक अनर्थ हो जाया करते हैं। धूर्त लोग उससे लाभ उठाकर वक्ताको हानि पहुँचा दिया करते हैं। अतः दिनमें तो इधर उधर शत्रु मित्र आदिको सम्यक् समझ कर वार्तालाप करे परन्तु रात्रिमें कभी वार्तालाप न करें कारण कि अनेक धूर्त इधर उधर फिरते रहते हैं।

दिवा निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव च नैव च।
विचरन्ति महाधूर्ताः वटेवररुचिर्यथा ॥१७६॥

विष्णुगुप्तकी रायमें सत्कृत्य करनेसे संसारमें उन्नति होती है

और भार्गव ऋषिकी सम्मतिमें अनेक मित्रोंके बनाये रखनेसे तरक्की होती है किन्तु बृहस्पतिकी रायमें अपनी आत्माके ऊपर विश्वास कर काम करो अन्य किसीका विश्वास न करो यही जीवनकी नीति है।

सुकृत्यं विष्णगुप्तस्य मित्राप्तिर्भार्गवस्य च।
बृहस्पतेरविश्वासो नीतिरेवं त्रिधामता ॥१७७॥

जो पुरुष एक कौड़ी भी कुपथमें चली जाय तो हजार सोनेके सिक्के समान समझकर उसे वापस प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है और समयपर अच्छे कामोंमें मुक्त हस्तसे उसका खर्च करता है ऐसे राजसिंहको कभी लक्ष्मी छोड़ती नहीं है।

यःकाकणीमप्यपथप्रपन्नां समुद्धरेन्निष्क सहस्रतुल्याम्।
युक्तेषु कालेषु च मुक्तहस्तस्तं राजसिंहं न जहाति लक्ष्मीः।१७८॥

मूर्ख पुरुषोंको उपदेश देना उनके प्रकोपका ही कारण होता है, जैसे सांपको दूध पिलानेपर उससे विष ही पैदा होता है।

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनम् ॥१७९॥

चिररोगी, चिरकाल तक प्रवासमें अकेला रहने वाला, परान्न-भोजी और परायेके स्थानपर सोने वाला पुरुष यदि मरजाय तो समझो कि वह जी गया वर्ना ऐसे पुरुषका जीवन मरणसे भी अधिक दुःखद है। मरना ही उनका विश्राम है।

रोगी चिरःप्रवासी परान्न भोजी परावशथशायी।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सो यस्य विश्रामः ॥१८०॥

जिस आदमीमें अपनी बुद्धि नहीं है, उसे शास्त्र कुछ सिखा नहीं सकता है। अंधे पुरुषको आरसी क्या काम देती है।

यस्यनास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥१८१॥

लेन देन और कर्तव्य कर्म समयपर जल्दी न करनेसे काल (समय) उसके रस (मजे) को पी जाता है ।

आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ॥१८२॥

धन, धान्य, सुवर्ण रत्न आदि सब पदार्थ राजाको प्रजासे ही प्राप्त होते हैं ।

हिरण्य धान्यरत्नानि धनानि विविधानि च ।
तथाऽन्यदपि यत् किंचित् प्रजाभ्यः स्युर्महीभृताम् ॥१८३॥

राजाके पास रहकर विद्या, कीर्ति, गो ब्राह्मणका पालन, दान, भोग और मित्रका संरक्षण न करे तो राजाकी सेवा करनेका कोई लाभ नहीं है ।

विद्या कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानाम्
दानं भोगो मित्र संरक्षणं च ।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥१८४॥

राजा प्रसन्न होता है तो सेवकोंको सन्मान मात्र देता है किन्तु सेवक सन्मान पाकर प्राण देकर भी राजाका उपकार करते हैं ।

राजातुष्टोऽपि भृत्यानां मानमात्रं प्रयच्छति ।
ते तु संमानितास्तस्य प्राणैरप्युप कुर्वते ॥१८५॥

राजाका जैसा आचरण होता है प्रजा भी वैसा ही आचरण

करती है। इसके लिये यह कहावत प्रचलित है कि "यथा राजा तथा प्रजा"।

राज्ञिधर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
प्रजास्तमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥१८६॥

जिस राजाकी प्रसन्नता व क्रोधका कोई फल न हो, उस राजा को कोई भी नहीं चाहता है जैसे कि नपुंसक पुरुषोंको स्त्रियां पसन्द नहीं करती हैं।

प्रसादो निष्फलो यस्य कोपश्चापि निरर्थकः।
न तं राजानमिच्छन्ति प्रजाः षण्ढमिव स्त्रियः॥१८७॥

अप्रगल्भ या संकोचशील पुरुषकी विद्या, कृपणका धन और डरपोक का बाहुबल ये तीनों ही संसारमें व्यर्थ हैं।

अप्रगल्भस्य या विद्या कृपणस्य च यद्धनम्।
यच्च बाहुबलं भीरोर्व्यर्थमेतत् त्रयं भुवि ॥१८८॥

कृपणका धन, देवता, ब्राह्मण और बन्धु, बांधवोंके काम नहीं आता है। उसे अग्नि, चोर या राजा अपहरण कर लेते हैं।

न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने।
कृपणस्य धनं याति वह्नि तस्कर पार्थिवैः ॥१८९॥

जिस पुरुषकी सब जगह जानेकी शक्ति हो वह केवल स्वदेश के प्रेमसे ही दुःख भागी कैसे रह सकता है। बापका कूआ है यह समझकर कायर पुरुष ही खारा जल पीता है अर्थात् वीर पुरुष देशान्तरमें जाकर धन कमाकर सुखी होते हैं।

यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात्,
स्वदेशरागेण हि याति खेदम्।

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः
क्षारं जलं का पुरुषाः पिबन्ति ॥१६०॥

राज दरबारमें बिना पूछे कोई बोलता है तो वह केवल अपमानित ही नहीं किया जाता बल्कि दुर्दशाको भी प्राप्त होता है।

अपृष्टस्तु नरः कश्चित् योब्रूते राजसंसदि।
न केवलमसंमानं लभते च विडम्बनाम् ॥१६१॥

विद्वान्, महत्वाकांक्षी, शिल्पी, बलवान् और सेवा वृत्ति वालों को राजाके आश्रयके बिना उन्नति नहीं मिल सकती है।

विद्यावतां महेच्छानां शिल्प विक्रमशालिनाम्।
सेवावृत्तिविदां चैव नाश्रयः पार्थिवं विना ॥१६२॥

पुरुषोंके जीवनकी तीन विडम्बनाएं हैं इधर उधरकी थोड़ीसी बातोंका पाण्डित्य, पैसा देकर स्त्री संग करना और भोजनकी परतंत्रता।

पल्लवग्राहि पांडित्यं क्रयक्रीतं च मैथुनम्।
भोजनं च पराधीनं तिस्रः पुंसां विडम्बना ॥१६३॥

रूईका चौंखा (टुकड़ा) तिनके की अपेक्षा भी हलका माना जाता है। किन्तु याचक (मांगने वाला पुरुष) रूईके चोंखे या फोहे से भी हलका गिना जाताहै। रूईको तो वायु उड़ा ले जाताहै, किन्तु याचकको हलका होनेपरभी वायु क्यों नहीं उड़ा ले जाता ? इसका उत्तर यह है कि वायुको भी यह डर लगता है कि कहीं यह मुझसे भी कुछ मांग न बैठे और मांगनेके डरसे वायु भी उसे उड़ाकर नहीं ले जाता अर्थात् मांगने वालेसे कोई बात भी नहीं करता है।

तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च याचकः ।
वायुना नीयते नाऽसौ मन्ये याचन शंकया ॥१६४॥

अपङ्ग, कुष्ठी, अन्धे, लूले-लंगड़े, दरिद्री अपने-अपने पूर्व जन्म के संचित पापोंको ही इस जन्ममें भोगते हैं। अतः इस जन्ममें जो पुण्य करेगा वह अगले जन्ममें अवश्य सुखी रहेगा।

अपाङ्गाः कुष्ठिनश्चान्धाः पङ्गवश्च दरिद्रिताः ।
पूर्वोपार्जित पापस्य फलमश्नन्ति देहिनः ॥१६५॥

अठारह पुराणोंमें व्यास भगवान्ने अनेक कथाएँ व धर्म लिखे हैं। परन्तु उनमें पाप पुण्यके विषयमें दो ही वाक्य लिखे हैं कि परोपकार करना पुण्य है और परपीड़न करना पाप है।

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥१६६।

अनेक बार व्यर्थका मिथ्या भाषण करके मनुष्य पापका भागी हो जाता है। अतः वाणीपर संयम रखना परमावश्यक है। मनु महाराजका उपदेश है कि सत्य बोलो पर प्रिय सत्य ही बोलना अच्छा है। कटु सत्य बोलने से हानि होती है। किन्तु प्रिय बनने के लिये असत्य भाषण न करे यही सनातन धर्म है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेषधर्मः सनातनः ॥१६७॥

अनेक बार मौन रखनेसे ही लाभ होता है। प्रकृतिमें वर्षा के आरम्भमें कोयल बोलना बन्द कर देती है, क्योंकि उस समय टर्र-टर्र करने वाले मैंढ़क बहुत बोलने लगते हैं। इसी प्रकार सभा समितियोंमें बकवादी निकम्मे वक्ता एकत्रित हो जांय तो वहां सुवक्ता मौन धारण कर लेते हैं।

भद्रं कृतं धृतं मौनं कोकिलैर्जलदागमे ।
दर्दु रा यत्र वक्तारस्तत्र मौनं हि संमतम् ॥१९८॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य जब असन्तोषका जीवन व्यतीत करते हैं तो नष्ट हो जाते हैं। राजा यदि अपनी प्राप्त संपत्तिमें ही संतोष मान ले तो, वह भी नष्ट हो जाता है इसी प्रकार लज्जा वाली गणिका (वैश्या) और निर्लज्जा कुल वधू भी नष्ट हो जाती हैं।

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभृतः ।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जा च कुलाङ्गना ॥१९९॥

जननी (माता), जन्मभूमि, जाह्नवी (गंगा), जनार्दन (भगवान्), जाति भोजनका सेवन ये भाग्य से ही प्राप्त होते हैं। अतः ये पञ्च-जकार दुर्लभ समझे जाते हैं।

जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवी च जनार्दनः ।
जातिमध्ये च भोक्तव्यं जकाराः पञ्चदुर्लभाः ॥२००॥

श्री रामचन्द्रजी अपने लघुभ्राता लक्ष्मणजी को कहते हैं कि हे सौमित्रे जननी और जन्म भूमिका सुख स्वर्ग सुखसे भी अधिक है। देखो यह लङ्का स्वर्णमयी है, परन्तु विदेशकी वस्तु होनेसे मुझे अच्छी नहीं लगती।

एषा स्वर्णमयी लंका सौमित्रे मे न रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥२०१॥

विधि (संसार नियन्ता) के विपरीत होनेपर समुद्रमें जल नष्ट हो जाता है अमृतके सागर चन्द्रमामें अमृत नहीं रहता है, कल्पतरु के पास रहनेपर भी इच्छित फलकी सिद्धि नहीं होती है और न सुमेरु पर्वतपर सोना ही रहता है।

विधौ विरुद्धे न पयः पयोनिधौ
सुधौघ सिन्धौ न सुधा सुधाकरे।
न वाञ्छितं सिध्यति कल्प पादपे
न हेम हेम प्रभवे गिरावपि ॥२०२॥

यदि किसी कारणसे यश उत्तम रीतिसे प्राप्त न कर सके तो ऐसा कोई कार्य करे, जिससे प्रसिद्धि हो सके। किसीने यहाँ तक कहा है कि घडा फोड़कर कपड़ा फाड़कर अथवा गधेपर चढ़कर भी ख्याति प्राप्त करें।

घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वा रासभरोहणम्।
येनकेनाप्युपायेन प्रसिद्धः पुरुषो भवेत् ॥२०३॥

प्रसिद्धि जो गुणसे प्राप्त होती है वह सर्व श्रेष्ठ है। दुनियामें अद्भुत कौतुककी बात, निर्मल विद्या और कस्तूरीकी लोकोत्तर सुगन्ध ये सब पानीपर फैलनवाले तैल बिन्दुकी तरह सर्वत्र संसार में अपने आप फैल जाती हैं। किसीके रोके नहीं रुकती।

वार्ता च कौतुकवती विमला च विद्या
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरंग नाभेः।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार-
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव लोके ॥२०४॥

बुढापा आनेपर केश, दांत, आंख, कानकी शक्ति क्षीण होती जाती है, परन्तु मनुष्यकी तृष्णा तो तरुण ही होती जाती है।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशाः दन्ताजीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते ॥२०५॥

तृष्णाको सीमित करनेके लिये जीवन सुखको समझ लेना चाहिये। प्राचीनोंने जीवन सुख छः माने हैं। इन्हें प्राप्त करनेका प्रयत्न करे। (१) धनकी नित्य प्राप्ति, (२) सदा आरोग्य बना रहना, (३) पत्नी प्रिय हो, (४) वह प्रिय वादिनी हो, (५) पुत्र वश वर्ती हो और (६) विद्या धन कमानेमें सहायक हो।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रिय वादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड्जीव लोकस्य सुखानि राजन् ॥२०६॥

उक्त छः सुखोंको पुरुष तब ही पा सकता है। जब वह बाल्यावस्थामें विद्याका अभ्यास करे, यौवनमें धनार्जनके साथ सुखद गृहस्थीका सुखानुभव करे, वृद्धावस्थामें मुनि वृत्ति धारण कर और अन्तमें योग क्रियासे आनन्द पूर्वक शरीरका त्याग करे।

शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनि वृत्तीनां योगेनान्ते तनुंत्यजाम् ॥२०७॥

संतोष, साधुसंग, विचारपूर्वक कार्य संपादन, कष्टके समय शान्ति रखना ये ऐसे गुण हैं कि इनकी प्राप्तिसे संसार रूपी सागर को मनुष्य सहजमें ही तर जाता है।

संतोषः साधुसंगश्च विचारोऽथशमस्तथा।
एत एव भवाम्भोधावुपायास्तरणे नृणाम् ॥२०८॥

मनुष्यके सिरपर सिंहिनीकी तरह वृद्धावस्था बैठी हुई है, शत्रु की तरह रोग दहाडते रहते हैं और शरीरको नष्ट करते रहते हैं, छिद्र वाले घड़ेके जलकी तरह आयु प्रतिदिन क्षीण होती जाती है, इससे अधिक आश्चर्य क्या हो सकता है?

व्याघ्रीवतिष्ठतिजरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्तिदेहम् ।
आयुः परिस्रवति भिन्न घटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥२०९॥

दिनों दिन प्राणी यम लोक सिधार रहे हैं, पर बचे हुए अपने आपको अमर समझे बैठे हैं, इससे अधिक आश्चर्य क्या है ?

अहन्यहनिभूतानि गच्छन्ति यममन्दिरम् ।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्तिकिमाश्चर्यमतः परम् ॥२१०॥

मनुष्य प्रतिक्षण, भोजन, वसन, स्त्री, पुत्र, बन्धुबान्धवकी ममता में लगा रहता है परन्तु यह नहीं समझता, कि किसी समय काल रूपी भेडिया आकर मैं मैं करते हुवे मैमनेकी तरह उठा ले जायगा ।

अशनं मे वसनं मे जाया मे बन्धुवर्गो मे ।
इति मे मे कुर्वाणं, कालवृको हन्ति पुरुषाजम् ॥२११॥

काम, क्रोध, भय, स्नेह, हर्ष, शोक, दया, हिंसा आदि चित्त रूपी लाक्षाको तपाने वाले हैं जो इन दोषोंको दूर कर एवं चंचलताको मिटाकर चित्तको सुदृढ बना लेता है, उसे ही शान्ति मिलती है ।

काम क्रोध भय स्नेह हर्ष शोक दया दमः ।
तापकाश्चित्तजतुनः तच्छान्तौ कठिनं तु तत् ॥२१२॥

यह सदा विचारते रहना चाहिये कि, मैं कौन हूँ कहाँसे आया हूँ स्त्री-पुत्र आदिका संयोग कैसे हुवा है । यह संसार कैसा विचित्र है ? इसकी सब चीजें आती जाती रहती हैं-ऐसा विवेक करके तत्व चिन्ता करते रहना चाहिये ।

का तव कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्त्वं वा कुत आयात स्तत्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः॥२१३॥

धर्म तत्व चिन्तन बड़ा कठिन है। अतः सत्संगसे महान् पुरुषों की गतिको समझ कर उसका अनुसरण करे। तर्क वितर्क प्रत्येक कार्यमें किया जा सकता है, पर उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है:, श्रुति स्मृतियोंमें बड़ा भेद मालूम होता है, सब मुनि वाक्य भी एक दूसरे से भिन्न भिन्न मत प्रतिपादिन करते हैं। ऐसी दशामें धर्मका तत्व अंधकारमें प्रतीत होता है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयोर्विभिन्ना नैको मुनिर्यस्यवचः प्रमाणम्।
धर्मस्यतत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः सपन्थाः॥२१४॥

धर्म वही समझना चाहिये जिससे यह लोक और परलोक दोनों सुधर सके और प्रजाका कल्याण हो।

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यःस्याद्धारण संयुक्तः सधर्म इति निश्चयः॥२१५॥

धर्मका निर्णय करनेके लिये निर्मल बुद्धि आवश्यक है। जो ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हैं, भूखे हैं, या कामी हैं, एवं अहंकारसे जिन की बुद्धि मूढ़ हो गई है, उन्हें विवेक नहीं होता है।

ऐश्वर्य मद मत्तानां क्षुधितानाञ्च कामिनाम्।
अहंकार विमूढानां विवेको नैव विद्यते॥२१६॥

अतः उत्तमजनोंको उचित है कि प्राण संकट आनेपर भी अपनी शुद्ध प्रकृतिको विकृत न होने दें, चन्दनको अनेक बार घिसनेका कष्ट देनेपर भी वह सुगन्ध ही देता रहता है गन्ना बार बार छीलने काटने-चूसनेपर भी मीठा रस देता है। और सोनेको बार बार तपाने

कूटने-छेदनेपर भी वह कुन्दन बनकर सुन्दर वर्ण प्रकाशित करता है उसी प्रकार महान् पुरुष अनेक प्रकारकी वेदना सहनेपर भी अपनी प्रकृतिको विकृत नहीं होने देते।

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगंधं
छिन्नश्छिन्नः पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुदण्डः।
तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिविकृतिर्जायते नोत्तमानाम् ॥२१७॥

उत्तम पुरुषोंकी प्रकृति यह होनी चाहिये कि जो बात अपनेको पसन्द न हो, सुखकारक न हो वह दूसरोंके लिये कदापि न करे। यही धर्मका सर्वस्व है और इसीका आचरण भी करना चाहिये।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥२१८॥

अठारह पुराणोंका सारधर्म यही है कि परोपकार करना पुण्य है और पर पीड़न पाप है।

अष्टादश पुराणानां सारं सारं समुद्धृतम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥२१९॥

बीती बातकी चिन्ता न करे भविष्यका भी अधिक विचार न करे वर्तमानकी गति विधिको समझकर कार्य करना ही विलक्षणता है।

गतशोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन वर्तन्ते हि विचक्षणाः ॥२२०॥

संसारमें सब सिद्धियाँ तपसे प्राप्त होती हैं। किसीने कहा है कि सत्य और श्रमसे सकलार्थसिद्धि होती है।

"सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः। श्रमका अर्थ ही तपस्या है।

यद्दुष्करं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुस्तरम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥२२१॥

जहाँतक संभव हो ऐसी युक्तिसे कार्य संचालन करे कि एक ही कार्यसे दो लाभ हों। जैसे एक ब्रह्मचारी जलघट और कुशा हाथमें लेकर जंगलमें आमके पेड़ोंके नीचे तर्पण करता है उससे आमके पौधे भी सींचे जाते हैं और तर्पण क्रियाके सम्पादनसे पितर लोग भी तृप्त हो जाते हैं। देखिये—एक ही क्रियासे दो कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

एको वटुः कुम्भकुशाग्रपाणि-
र्वने वनैः सिंचति बालचूतान्।
आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता
एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥२२२॥

आजकल लोग बड़े बड़े व्याख्यान देते हैं और अपनी पंडिताई का प्रचार करते हैं। इनसे मुक्ति होना संभव नहीं है। ये सब युक्तियाँ तो पेट भरनेके लिये की जाती हैं।

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यान कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां यत्तद् भुक्तये न तु मुक्तये ॥२२३॥

संसारका यह नियम है कि जिसका क्षय होता है उसका फिरसे संचय होता है। जो गिरता है, वह उठता भी है। जिसका संयोग होता है उसका वियोग भी होता है और मरनेके बाद फिर जन्म भी होता है सदा यही क्रम चलता रहता है, इसीका नाम संसार है।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥२२४॥

नास्तिक लोग इसको विपरीत मानते हैं। उनके विचारमें जो कार्य हो गया उसका पुनरावर्तन नहीं हो सकता। जो मर गया वह सदाके लिये मर गया, फिर उसका पुनरागमन नहीं हो सकता।

कृतस्य करणं नास्ति मृतस्य मरणं नहि।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥२२५॥

ऐसे विचारोंमें सार नहीं है। परन्तु यह निश्चित है कि जो सुख वीतराग पुरुषको एकान्तमें रहनेसे होता है, वैसा सुख इन्द्र और चक्रवर्ती राजाको भी नहीं हो सकता है।

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकांतवासिनः ॥२२६॥

इसलिये शान्तिसे जीवन बितानेका यत्न करे। भूतलपर विद्यमान् संसारके सारे द्रव्य, अन्न, स्वर्ण, गवादि पशु और स्त्रियोंके लिये मनुष्योंमें इतनी तृष्णा है कि यदि एक ही को यह संसारका सारा धन-धान्यादि दिया जाय तो उसकी भी मनोकामना पूरी नहीं हो सकती है। इसलिये सदा संतोषसे ही सुखी रहनेका यत्न करे।

यत् पृथिव्यां व्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥२२७॥

शान्त पुरुषका चित्त संपत्तिमें कमल-सा कोमल होता है और विपत्तिके समय महान् पर्वतकी शिलाकी तरह कठोर होता है।

संपत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पल कोमलम्।
आपत्सु च महाशैल शिलासंघात कर्कशम् ॥२२८॥

शत्रुके आनेपर उसका अपने भवनमें उचित आतिथ्य करना चाहिये वृक्ष अपने काटने वालेके ऊपरसे भी छाया नहीं हटाता।

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥२२९॥

अपनी पत्नी, अपने भोजन और अपने धनमें संतोष करना उचित है। किन्तु अध्ययन, जप और दानमें संतोष न करे। ये कार्य करता ही रहे।

संतोष स्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः ॥२३०॥

जिस पुरुषकी गति साहित्यमें है, उसे स्त्री विषयक शुष्क विनोद से क्या आनन्द आ सकता है।

यस्यास्ति साहित्यगतिर्विमर्शः।
किं तस्य शुष्कैश्चपला विनोदैः ॥२३१॥

पंडित लोग मत्सरमें फँसे हुए हैं, प्रभुजन स्मय (ईर्ष्या) से दूषित चित्त हो रहे हैं और शेष जनता अज्ञानसे उपहत हो रही है। ऐसी दशामें सुभाषित साहित्य अपने अंगमें ही जीर्ण हो रहा है।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥२३२॥

अग्नि, ऋण और शत्रुको सर्व प्रकारसे निर्मूल कर देना चाहिये। अन्यथा यह बार बार पैदा होकर कर्ताको नष्ट कर देते हैं।

ऋण शेषश्चाग्नि शेषः शत्रु शेषस्तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्तन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥२३३॥

दुर्जन पुरुषकी विशिष्टता भी दूसरोंके उपद्रवका ही कारण

बनती है। उपवास किये हुए व्याघ्रका पारण भी पशु मारणका कारण होगा।

दुर्जनानां विशिष्टत्वं परोपद्रवकारणम्।
उपोषितस्य व्याघ्रस्य पारणं पशुमारणम् ॥२३४॥

यद्यपि मनुष्यका चित्त लाखकी तरह कठोर होता है तथापि विषय रूपी तापके लगते ही वह पिघल जाता है।

चित्तरत्नं तु जतुवत् स्वभावात्कठिनात्मकम्।
तापकैर्विषयैर्योगाद् द्रवत्वं प्रतिपद्यते ॥२३५॥

संसारका सब सामान उपयोगमें लाया जा सकता है। केवल सुयोग्य योजककी आवश्यकता है। जैसे कि—कोई भी अक्षर ऐसा नहीं है, जिसका मन्त्र रूपसे प्रयोग न हो सकेगा, कोई भी वनस्पति ऐसी नहीं जिसका उपयोग रोग निवारणके लिये न किया जा सके, कोई भी स्त्री पुरुष ऐसा नहीं जिसका किसी न किसी काममें उपयोग न हो सके।

अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः ॥२३६॥

आजकल सभामें विजय प्राप्त करनेके लिये वाद करने वालेकी बात न तो समझी जाती है और न सुनी जाती है। शीघ्र अपनी बात ही की धाक जमाई जाती है।

न भेतव्यं न बोद्धव्यं न श्राव्यं वादिनो वचः।
झटिति प्रति वक्तव्यं सभासु विजिगीषुभिः ॥२३७॥

जिस पुरुषने अपने विद्या बुद्धिके चमत्कारसे वचन रचनाकर संसारको अनुयायी बना लिया है, वह राजशक्तिके पीछे रहे या आगे रहे उसका कोई नुकसान नहीं हो सकता है। जैसे उत्तम

खानसे उत्पन्न हुई मणि यदि चमकदार है, सुन्दर है और पूरे पानी की है तो, चाहे वह जंगलमें रहे चाहे सुन्दरियोंके गलेके हारमें रहे उसके मूल्यमें कोई अन्तर नहीं आ सकता है। इसी प्रकार उस विद्या वारिधिके मूल्याङ्कनमें राज सत्ताके कारण परिवर्तन नहीं हो सकता।

पुरो वा पश्चाद्वा यदिह निवसामः क्षितिपतेः।
ततः किन्नश्छिन्नं वचनरचनाक्रीत जगताम्॥
अगारे कान्तारे कुचकलशहारे मृगदृशाम्।
मणेस्तुल्यं मूल्यं सहज सुभगस्य द्युतिमतः॥२३८॥

कुलीन और अकुलीनका पता उनके वाग्व्यवहारसे ही लग सकता है आकृतिसे नहीं। कुलीनके हाथमें कमलका चिह्न नहीं रहता न अकुलीनके ललाटपर सींग लगा रहता है।

न जारजातस्य ललाटशृङ्गम्
कुलप्रसूतस्य न पाणिपद्मम्॥
यदा यदा मुञ्चति वाक्यबाणम्
तदा तदा तस्य कुलप्रमाणम्॥२३९॥

जो मनुष्य बलवान् चारित्रवान् और विद्वान् होता है तो उसका लोहा दुनियां मानती है। जो वह कहता है वही प्रमाण समझा जाता है। जैसे कि व्याकरण, न्याय या तर्कके प्रभावसे विद्वान् जैसा भी उचित अनुचित निर्णय देते हैं वही सर्वत्र मान्य होता है। जिस दिशामें सूर्य उदय हो जाता है वही दिशा पूर्व कहलाने लगती है। किन्तु सूर्य दिशाके पराधीन होकर उदित नहीं होता।

वयमिह पद विद्यां तर्कमान्विक्षिकीं वा
यदि पथि विपथे वा वर्तयामः स पन्थाः।

उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा
नहि तरणिरुदीते दिक् पराधीन वृत्तिः॥२४०॥

संसारकी गति बड़ी विचित्र है। यहाँ सर्वत्र शत्रु, मित्र और उदासीन ये पक्ष पैदा हो जाते हैं। वनमें रहकर अपना काम करने वाले मुनियोंको भी यह व्यथा तो व्यथित करती ही है।

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः।
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षा मित्रोदासीनशत्रवः ॥२४१॥

ऐसी दशामें किसी पुण्यारण्यमें जाकर 'शिव शिव' का जप करते हुए दिन गुजारने चाहिये और सब विषयोंमें सम दृष्टि करके रहना चाहिये। चाहे गलेमें हार हो, या सांप लटका हो, चाहे सुन्दर सुखद कुसुम सज्जित शय्या हो और चाहे पत्थरकी शिला पर सोना पड़े, चाहे मणियोंका व्यवहार करे और चाहे पत्थरों का व्यापार करे, चाहे बलवान् शत्रुके साथ रहना पड़े और चाहे मित्रके साथ, स्त्रियोंके साथ किलोलें करे, और चाहे घासके फूलोंके साथ खेल करे तब भी एक ही सा भाव हृदयमें विराजमान रहे। तभी सुख दुःखसे ऊपर उठकर मनुष्य सुखी हो सकता है।

अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा
मणौ वा लोष्टे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्तु दिवसाः
क्वचित् पुण्येऽरण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः॥२४२॥

संसारके विषय तो चिरकालतक रह कर भी एक दिन अवश्य चले जायंगे फिर मनुष्य स्वयं ही विषय वासनाका त्याग क्यों नहीं कर देता है। यदि पंचेन्द्रियोंके विषयोंका स्वयं त्याग कर दे तो

घड़ा आनन्द मिलेगा। अन्यथा विषयोंके स्वयं जानेपर अर्थात् अन्धा, बहरा, गूंगा होनेपर अत्यन्त दुःखका अनुभव होगा।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषयाः,
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यस्त्वयममून्।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः,
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति॥२४३॥

संसारमें मनुष्यपर आपत्ति कैसे आती है, इसका अभीतक निर्णय नहीं हो सका है। किस पाप पुण्यका यह फल है यह भी नहीं समझ सकते। स्थानका माहात्म्य या गुण क्या है। परन्तु यह अवश्य है कि काल अपने व्यसन रूपी हाथ फैलाकर दूरसे ही मनुष्यको पकड़ लेता है। पक्षी और मत्स्य भी बन्धन पाते हैं।

उदाहरणार्थ देखिये—पक्षी यद्यपि एकान्त आकाशमें उड़ते हैं, फिर भी चिड़ीमार उन्हें फांस ही लेता है। मत्स्य यद्यपि अगाध पानीमें रहते हैं, फिर भी चालाक मछुए उन्हें जालमें डाल ही लेते हैं।

व्योमैकान्त विहारिणोऽपि विहगाः संप्राप्नुवन्त्यापदम्
बद्धयन्ते निपुणैरगाध सलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि
दुर्नीतं किमिहास्ति किं सुचरितं कः स्थान लाभे गुणः
कालो हि व्यसन प्रसारित करो गृह्णाति दूरादपि॥२४४॥

प्रकृतिका वैचित्र्य है कि प्रत्येक पर्वतकी खानोंमें माणिक्य-रत्न नहीं मिलता है, न हर किसी हाथीके कपालमें गजमुक्ता पाया जाता है, न सज्जन पुरुष सब जगह प्राप्त होते हैं और न वन-वनमें चंदनका वृक्ष पाया जाता है। ये पदार्थ अपने उचित स्थानपर ही प्राप्त हो सकते हैं।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
सज्जना नैव सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥२४५॥

इसलिये उचित है कि मालाकारकी तरह दुनियाँमें चुने हुये पुरुषोंसे पुष्प संचयकी भांति सहायककी रक्षा करता हुआ अपने कार्यकी सिद्धि करे, न कि काम निकल जानेके बाद तोताचश्मकी तरह रक्षक ही भक्षक बन जावे। माली पुष्पका संचय करता है और अपनी रोजी देने वाले वृक्षकी (जल तथा खाद देकर) रक्षा करता है, परन्तु खुदगर्ज कोयला बनाने वाला अपनी रोजीको ही समूल उखाड़कर जलाकर कोयला बना देता है और हमेशाके लिये निरालंब हो जाता है. ऐसा करना सर्वथा हानिकारक है।

पुष्पं पुष्पं विचिनुयात् मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकारो द्रुमारामे न यथाङ्गारकारकः ॥२४६॥

किसी सज्जन पुरुषके शिरसे आप तृण हटा दें तो वह जीवन भर अहसान मानता है। परन्तु दुष्ट पुरुषके कार्यमें प्राण देकर भी उपकार करनेसे वैर ही मानता है।

सन्तस्तृणोत्सारणमुत्तमाङ्गात्सुवर्णकोटचर्पणमामनन्ति।
प्राणव्यये वापि कृतोपकाराः खलाः परे वैरमिहोद्वहन्ति॥२४७॥

तर्क बुद्धि हीन वैद्य, निर्लज्जा कुल वधू, मूढ यति और खुर्राटें लेने वाला यात्री (मुसाफिर) अथवा चार व्यक्तिये मनुष्यके लिये सिर दर्द हैं। इनसे भगवान रक्षा करें।

वैद्यस्तर्कविहीनो कुलाङ्गना चैव निर्लज्जा।
मूढो यतिः शयातुः प्राघुणिकः स्याच्छिरः शूलम्॥२५८॥

सज्जन पुरुष किये हुए उपकारको कभी नहीं भूलते हैं। जैसे छोटी आयुमें थोड़ा सा जल पीये हुये नारियलके वृक्ष अपने सिर

पर भार उठाकर आजीवन स्वादु जल वाला फल उपकार करने वालेको देते हैं इसी प्रकार मनुष्यको उपकार कभी नहीं भूलना चाहिये।

प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः
शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।
ददति जलमनल्पास्वादमाजीवितान्तम्
नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥२४६॥

मनुष्य आपत् कालमें परिस्थितिको समझकर संतोष करे। जो राजहंस स्वर्ण कमलोंके रेणुमें पलते हैं और गंगाकी निर्मल जल तरङ्गोंमें खेलते हैं, वे भी आपत् कालमें शैवालके जालसे युक्त जल में निर्वाह करते हैं।

ये वर्धिताः कनकपंकजरेणुमध्ये
मन्दाकिनीविमलनीरतरङ्गभङ्गैः।
ते सांप्रतं विधिवशात् खलु राजहंसाः
शैवालजालजटिलं जलमाश्रयन्ति ॥२५०॥

संसारमें जितने भी रस हैं, उनमें सुभाषित रस सर्वोपरि है। न यह विकृत होता है और न विरस होता है। अनेक जनोंके उपयोग करने पर भी यह क्षीण नहीं होता है, जड़ताको मिटाकर रुचिको बढ़ाता है और तृप्ति देता है।

नायं प्रयाति विकृतिं विरसो न यः स्यात्
न क्षीयते बहुजनैर्नितरां निपीतः।
जाड्यं निहन्ति रुचिमेति करोति तृप्तिम्
नूनं सुभाषितरसोऽन्यरसातिशायी ॥२५१॥

बलवान् पुरुषको अपने समान बल वालेके साथ ही अपनी शक्तिका प्रदर्शन करना चाहिये। किसी कवि ने कहा है सिंह अपने नखोंका पराक्रम मद मत्त हाथियोंके ऊपर ही आजमाता है, हथिनियों पर नहीं और न मृगोंपर क्योंकि हथिनियां दयाकी पात्र हैं और हरिण बलमें सिंहकी क्षमता नहीं रखते।

दिगन्ते श्रूयन्ते मदमलिनगण्डाः करटिनः
करिण्यः कारुण्यास्पदमसमशीलाःखलु मृगाः।
इदानीं लोकेऽस्मिन्ननुपमशिखानां पुनरयम्
नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मिन् मृगपतिः॥२५२॥

लोभके वशमें मनुष्य माता, पिता, भ्राता, पुत्र, मित्र, स्वामी और सहोदरी बहिनको भी मार डालता है अतः लोभका सदा दमन करें।

मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम्।
लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनं वा सहोदरीम्॥२५३॥

जो मनुष्य धनके लिये हाय हाय करता है और शक्तिके बिना क्रोध करता है वह कभी सुखी नहीं रह सकता है।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सुखिनौ न कदाचन।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः॥२५४॥

मित्रको स्वच्छ व्यवहारसे वशमें करना चाहिये, शत्रुको नीति बल से, लोभीको धनसे, स्वामीको उत्तम कार्यसे, द्विजोंको सम्मानसे, युवतिको प्रेमसे, कुटम्बियोंको समान व्यवहारसे, क्रोधीको स्तुतिसे, गुरुजनोंको नम्रतासे, मूर्खोंको अनेक प्रकारकी कथाओंसे, विद्वानोंको

विद्यासे, रसिक पुरुषोंको रसकी बातोंसे एवं शेत्र व्यवहारियोंको शीलसे वशमें करें।

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्धं धनैरीश्वरम्
कार्येण द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णा शनैर्बान्धवान्।
अत्युग्रं स्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधम्
विद्याभी रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद्वशम्॥२५५॥

आजकी दुनियाँमें पक्ष वालेका काम सरलतासे सिद्ध हो जाता है। कमजोर काक भी पक्ष वाला होनेसे पर्वतके शिखरपर पैदा हुए वृक्षका फल खा सकता है। परन्तु हाथियोंको पछाड़ने वाला सिंह भी पक्ष हीन होनेसे वृक्षके नीचे पड़ा रह कर कष्ट उठाता है और फल नहीं पा सकता।

उत्तुङ्ग शैलशिखरस्थितपादपस्य
काकोऽपि पक्वफलमालभते सपक्षः।
सिंहो बली गजविदारणदारुणोऽपि
सीदत्यहो तरुतले खलु हीनपक्षः॥२५६॥

रात्रि वही शोभायमान होती है जो बादलोंसे रहित और चन्द्रमा की चांदनीसे खिली हुई हो, स्त्री वही उत्तम है जो गुणवती हो और पति परायणा हो। मधुरता वही उत्तम है जिससे भगवान्के गुणगानका माधुर्य हो और चतुरता वही उत्तम है जिससे दोनों लोकोंका सुधार हो सके।

या राका शशिशोभना गत घना सा यामिनी यामिनी
या सौन्दर्यगुणान्विता पतिरता सा कामिनी कामिनी।

या गोविन्दगुणप्रमोदमधुरा सा माधुरी माधुरी
या लोकद्वयसाधिनी तनुभृतां सा चातुरी चातुरी ॥२५७॥

देवता पशु पालकी तरह मनुष्यकी रक्षा नहीं करते हैं जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे बुद्धि प्रदान कर रक्षा करते हैं।

न देवा दंडमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संविभजन्ति तम् ॥२५८॥

जिस पुरुषको देवता पराजित करना चाहते हैं, उसकी बुद्धि नष्टकर देते हैं, जिससे वह हीन अथवा निन्द्य बातें ही देखा करता है।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥२५६॥

दुष्ट पुरुषोंका कोई सगा नहीं होता, माँगने पर कौन कुपित नहीं होता है, कौन ऐसा है जो धनको पाकर गर्व नहीं करता है, कुकर्म करनेमें कौन पंडित नहीं है अर्थात् बुरे काम सब ही कर सकते हैं।

बन्धुःको नाम दुष्टानां कुप्येत्को नाति याचितः ।
को न तृप्यति वित्तेन कुकृत्ये को न पण्डितः ॥२६०॥

जब मनुष्य लोभ और मोहमें फँसकर या दया अहिंसा आदि धर्म्म प्रवृत्तियोंसे प्रेरित होकर पाप वा पुण्य करता है तब उसकी मन्दता वा उत्कटताके अनुसार तीन वर्ष, तीन मास, तीन पक्ष या तीन दिनमें, उसका फल मिल जाता है।

त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः ।
अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते ॥२६१॥

इस लिये त्याग, तपस्या, यम, नियम आदिका जीवन बिताने से ही सुख मिलता है। भोगोंके भोगनेसे भोगेच्छा कभी शान्त नहीं होती है, अग्निमें घृत आदि हवन सामग्री डालते रहनेसे क्या कभी वह शान्त हो सकती है ? कभी नहीं।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥२६२॥

काल डंडा लेकर किसीका शिरश्छेद नहीं किया करता वह तो नाश करने वाली विपरीत बुद्धि देकर ही अपना बल प्रदर्शित किया करता है।

न कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित् ।
कालस्य बलमेतावद् विपरीतार्थदर्शनम् ॥२६३॥

विद्या मनुष्यकी सर्व साधना पूर्ण करती है। वह माताकी तरह रक्षा करती है, पिताकी भांति हित साधन करती है, प्रिय पत्नीकी तरह चिन्ता दूर कर रमण कराती है, दिशाओंमें कीर्तिका प्रसार करती है और लक्ष्मी प्रदान करती है, कहाँ तक कहे कल्पलताकी तरह विद्या समस्त इच्छित फल प्रदान करती है।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम् ।
लक्ष्मीम् तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥२६४॥

जैसे पुत्र विद्या-विनय-संपन्न न होकर कुलकलंक बन जाय तो उससे सारा कुल नष्ट हो जाता है। वैसे ही जंगलमें एकही शुष्क वृक्षमें आग लग जानेसे सारा जंगल जलकर भस्म हो जाता है।

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥२६५॥

कविके उस काव्यसे क्या लाभ जिसको सुनकर मनुष्यका सिर न हिलने लगे। इसी प्रकार उस धनुष धारीके छोड़े हुये बाणसे भी क्या लाभ जिसके हृदयमें लगनेसे मनुष्य चक्कर न खा जावे। अर्थात् काव्य सुनकर मनुष्य मस्त हो जावे और वाह वाह करने लगे एवं बाणके लगते ही शिकार धराशायी हो जावे तभी उसका महत्व है।

किं कवेस्तस्य काव्येन किं काण्डेन च धन्विनः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥२६६॥

प्रकृतिका नियम है कि जिसका जो स्वभाव होता है वह उसे कभी छोड़ नहीं सकता है। जैसे कि यदि कुत्तेको दैवात् राजपदवी दी जाय तो भी वह क्या जूतोंके खानेका स्वभाव छोड़ सकेगा कभी नहीं। आज अनेक जन उच्चपदपर प्रतिष्ठित होकर भी अपने स्वभाव के अनुसार घूस खोरी आदि घृणित कार्योंको कर रहे हैं।

यः स्वभावो हि यस्यास्ते स नित्यं दुरति क्रमः।
श्वा यदि क्रियते राजा तत्किं नाश्नात्युपानहम् ॥२६७॥

नीच पुरुष दूसरोंकी यशोऽग्निसे जलते रहते हैं। वे उस यशस्वी पुरुषके पदको तो पा नहीं सकते अतः उसकी निन्दा करते रहते हैं। ऐसे नीचोंकी निन्दा सुनकर घबड़ाना नहीं चाहिये।

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना।
अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते ॥२६८॥

सदा उद्योग करनेसे दरिद्रता नहीं सताती है भगवानका जप

करनेसे पाप कर्ममें प्रवृति नहीं होती है. मौन रखनेसे कलह नहीं होता है और जागते रहनेसे चौर आदिका भय नही होता है।

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम् ।
मौनिनः कलहो नास्ति न भयं चास्ति जाग्रतः ॥२६९॥

क्षमा जैसा कोई तप नहीं है, संतोषसे बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा जैसा कोई रोग नहीं है और दयासे बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

क्षमा तुल्यं तपो नास्ति संतोषान्न परं सुखम् ।
नास्ति तृष्णासमो व्याधिर्न च धर्मो दयापरः ॥२७०॥

सब जगत्का कल्याण हो, सब जीव एक दूसरेके हितमें लगे रहें, दोष सब शान्त हो जावें, सब सुखी रहें यही भावना मनुष्यके हृदयमें रहनेसे कल्याण होता है।

शिवमस्तु सर्वजगतां परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु शान्तिं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥२७१॥

हे लक्ष्मी मालूम होता है कि जब तुम समुद्रसे निकली तो तुम्हारे साथ समुद्रकी धूलि भी लगी चली आई तेरे साथ समुद्रसे भी धूली उठ आई है क्या ? इसीलिये तो लक्ष्मीवान् पुरुष देखते हुए भी नहीं देखते हैं क्योंकि उनकी आंखमें वह धूलि पड़ी हुई है।

मन्ये लक्ष्मिःत्वया सार्द्धं समुद्राद् धूलिरुत्थिता ।
पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति श्रीमन्तो धूलिलोचनाः॥२७२॥

धनिक लोगोंका आश्रय न लेकर अपनी कमाईका उचित उपयोग करनेसे मनुष्यको कष्ट नहीं होता है। छोटा घर बनावे मोटा कपड़ा पहने और सस्ता अन्न खायं तो प्रलयपर्यन्त भी दुःखसे

बचे रह सकते हैं। परन्तु शर्त यह है कि घरमें कन्याका जन्म न हो। कन्या उत्पन्न होते ही सारा सुख किरकिरा हो जाता है।

सूक्ष्मगृहा स्थूलपटाः असहर्षान्नसेविनः ।
प्रलयेऽपि न सीदन्ति यदि कन्या न जायते ॥२७३॥

दुनियांमें जिसके पास धन है उसके ही हितैषी, मित्र, बन्धु, बांधव सब बने रहते हैं, वही पुरुषत्व वाला और पंडित माना जाता है। अतः धनकी रक्षा करें।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बांधवाः ।
यस्यार्थाःस पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पंडितः ॥२७४॥

जब तक धन कमानेकी शक्ति है तभी तक अपना परिवार प्रेम करता है जब शरीर जर्जर हो जाता है तब घरमें कोई बात भी नहीं पूछता है।

यावद्वित्तोपार्जनशक्तस्तावन्निज परिवारो रक्तः ।
पश्चाज्जर्जरभूते देहे वार्ता कोऽपि न पृच्छति गेहे ॥२७५॥

सद्वंशज पुरुष गुरुओंके भी दोषोंको प्रकट करते हैं और शत्रुओंके गुणोंको भी प्रकाशित करते हैं। यह उनका जन्म जात स्वभाव ही होता है।

शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि ।
इति सद्वंश जातानां स्वभावोस्ति सतामपि ॥२७६॥

अपने परिवार वालों, मित्रों तथा सेवकोंको सदा मिलाये रखना चाहिये। अन्यथा शोभा नहीं रहेगी। किसी कविने अन्योक्ति कही

फा० नं० ६

है कि हे मयूर ! अपनी गर्दनकी चमककी शोभासे उन्मत्त होकर हम पूँछके बालोंको मत त्याग। हमें छोड़नेसे तुम्हारी शोभा चली जायगी और हमारे गुणोंसे मुग्ध होकर दूसरे अपनी शोभा बढावेंगे हम तो भगवान् कृष्णके मुकुटमें जा लगेंगे परन्तु तुम बांडे हो जाओगे।

मा मुञ्च मञ्जुल गलप्रभया प्रमत्तः
पक्षास्तवास्म किल कान्तिकराः कलापिन् ।
हानिस्तवैव यदि मुञ्चसि नो वयं तु
गोपालबाल मुकुटं पुनराश्रयामः ॥२७७॥

जहाँ कुटुम्बका झगड़ा हो वहाँ कदापि न रहे इस विषयमें चन्दनपर यह अन्योक्ति ध्यान देने लायक है–हे लोकानन्दकारी सुगन्ध देने वाले चन्दन वृक्ष ! तुम इस जंगलमें न ठहरो ? क्योंकि इस बनको तो परुष हृदय वाले सारहीन दुर्वंशोंने (निंदनीय बांसके वृक्षोंने) दूसरे अर्थमें (निन्दनीय वंशमें उत्पन्न वालोंने) आक्रान्त कर रक्खा है। ये पारस्परिक संघर्षसे उत्पन्न ज्वालावलीसे संकुल बने हुए ये दुर्वंश केवल अपने ही कुलको नहीं जलायेंगें, अपितु सारेके सारे वनको जला डालेंगे। इसी प्रकार दुष्ट कुटुम्बी आपस में लड़कर सारे परिवारका नाशकर देते हैं।

लोकानन्दन चन्दनद्रुम सखे ! नास्मिन्वने स्थीयतां
दुर्वंशैः परुषैरसारहृदयैराक्रान्तमेतद्वनम् ।
ते ह्यन्योऽन्यनिघर्षजातदहनज्वालावलीसंकुला
न स्वान्येव कुलानि केवलमहो सर्वं दहेयुर्वनम् ॥२७८॥

जैसा द्रव्य हो वैसा ही उसका सम्मान करना चाहिये। जिस मणिको सोनेके आभूषणमें लगानेसे सौन्दर्य निखरता है उसे कोई

रांगेमें लगा दे तो न वह रोती है और न शोभा ही देती है। केवल लगाने वालेकी निन्दा होती है।

कनकभूषणसंग्रहणोचितो
यदि मणिस्त्रपुणि प्रणिधीयते।
न स विरौति न चापि स शोभते
भवति योजयितुर्वचनीयता ॥२७६॥

जिस राष्ट्रमें शूद्रोंका प्राबल्य हो, जिसमें नास्तिक सब जगह व्याप्त हो, वह राष्ट्र दुर्भिक्ष और भयसे पीड़ित होकर शीघ्र नष्ट होता है ऐसा मनु महाराजने लिखा है।

यद्राष्ट्रं शूद्रभूयिष्ठं नास्तिका क्रान्तमद्विजम्।
विनश्यत्याशु तद्राष्टं दुर्भिक्षभयपीडितम् ॥२८०॥

जिस देशमें अपूजनीयोंकी पूजा होती है अर्थात् सम्मान होता है और पूजनीयोंका अनादर होता है वहाँ तीन बातें हुआ करती हैं दुर्भिक्ष, मरण और भय।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥२८१॥

अनेक बार संग दोषसे निर्दोषमें भी दोषोंका आरोप हो जाता है। जैसे अन्योक्ति है कि चन्द्रमा रात्रिको करता है, अर्थात् रात्रिमें फिरता है। रात्रिको दोषा कहते हैं। जो दोषाको करने वाला है वह रात्रिके अन्धकारको भी हटाता है। ऐसे भले कार्यके करनेपर भी अन्धकारके संपर्क होने हीसे चन्द्रमामें कलंक आ सकता है तो मनुष्यमें भी सुधार करते हुए भी बुरोंके संगमें रहनेसे बुराइयाँ आसकती हैं।

"दोषा न सन्ति यदि सन्तु किमत्र चित्रम्
दोषाकरस्य मम संचरस्तमिस्रे ॥२८२॥

परन्तु ऐसे पुरुषोंका भले आदमी त्याग नहीं करते हैं। जैसे शिवजी दोषाकर, कुटिल, कलंकित सूर्य (मित्र) के क्षय होने पर उदित होने वाले चन्द्रमाका त्याग नहीं करते हैं। क्योंकि आश्रितों के गुण दोषोंका विचार करना उचित नहीं है। ऐसा ही सज्जनोंका स्वभाव है।

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि
मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति
नैवाश्रितेषु गुणदोष विचारणास्यात् ॥२८३॥

नारियलके फलमें जैसे जल एकत्रित होता है, वैसे ही होने वाली बात स्वयमेव हो जाती है। जाने वाली बात भी हाथीके पेट में गये कैथके गूदेकी तरह स्वयं चली जाती है। बाहरमें कैथका फल वैसाका वैसा बना रहता है परन्तु भीतरसे गूदा गायब हो जाता है। अतः चिन्ता करना व्यर्थ है।

भवितव्यं भवत्येव नारिकेलफलाम्बुवत्।
गन्तव्यं गच्छतीत्येव गजभुक्त कपित्थवत् ॥२८४॥

इसलिये भगवान्से प्रार्थना करे कि किसीसे न माँगनेका अवसर मिले न किसी को ना कहने का।

देहीति वचनं नास्ति नास्तीति वचनं तथा।
देहि नास्तीति वचनं माभूत् जन्मनि जन्मनि ॥२८५॥

मनुष्यको अनेक बार जीवनमें ऐसा भ्रम हो जाता है कि वह असलियतको समझे बिना ही काम कर बैठता है और उससे हानि उठाता है। इसलिये खूब ऊहापोह करके कार्य संपादन करना चाहिये। निम्न श्लोकमें भ्रान्तिमान अलंकारका बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया है कि शुकपक्षीकी चोंचको पलाश पुष्पकी कली समझकर भ्रमसे भ्रमर उस पर झपटता है और शुक (तोता भी) जामुनका फल समझकर भ्रमरको दबाना चाहता है। दोनों ही मिथ्या ज्ञानसे हानि उठा रहे हैं।

पलाशमुकुलभ्रान्त्या शुकतुण्डे पतत्यलिः।
सोऽपि जम्बूफल भ्रान्त्या तमालिं धर्तुमिच्छति ॥२८६॥

जो पुरुष धन को सांपकी तरह समझकर डरता है मिष्टान्न खानेकी इच्छाको विष समझकर त्याग करता है और स्त्रियोंको राक्षसी समझकर बचाव करता है वही विद्या प्राप्त कर सकता है।

योऽहेरिव धनाद् भीतो मिष्टान्नाच्च विषादिव।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति ॥२८७॥

मनुष्य जिस आदरसे धनवानोंकी धनके लिये स्तुति करता है उसी प्रकार प्रेम पूर्वक भगवानका भजन करे तो बन्धनसे मुक्त हो सकता है।

आदरेण यथा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया।
तथा चेद् विश्वकर्तारं को न मुच्येत् बन्धनात् ॥२८८॥

यदि मनुष्य संसारके दुःखोंसे मुक्ति चाहता है तो विषयोंको विष समझ कर छोड़ दे और क्षमा, सरलता, दया, संतोष और सत्यको अमृत समझकर उनका सेवन करे।

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत् त्यज ।
क्षमार्जवदयातोषं सत्यं पीयूषवद् भज ॥२८९॥

इस बातका सदा विचार करता रहे जरावस्था शारीरिक रूप को हर लेती है, आशा बद्ध होनेसे धैर्य नष्ट हो जाता है, मृत्यु प्राणों को हर लेता है, निन्दा करनेकी प्रवृत्ति धर्माचरणको नष्ट कर देती है, काम वृत्तिकी प्रवृत्तिसे लज्जा नष्ट हो जाती है, दुष्टोंकी सेवा करनेसे चरित्र नष्ट होता है, क्रोध करनेसे लक्ष्मी नष्ट होती है और अभिमानके वश हो जानेसे सर्वस्व नष्ट हो जाता है ।

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।
कामो ह्रियं वृत्तमनार्यसेवा
क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥२९०॥

किसीने कहा है अभिमानको सुरा समझ कर त्याग दे गौरवकी बातों को रौरव नरक देने वाली समझकर छोड़ दे और प्रतिष्ठा को शूकर की विष्ठा समझकर त्याग दे, इसीसे मनुष्य सुखी हो सकता है ।

अभिमानं सुरापानं गौरवं घोर रौरवम् ।
प्रतिष्ठा शौकरीविष्ठा त्रयं त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥२९१॥

वृद्ध पुरुष विषयोंको न भोग सकता है और न छोड़ सकता है । जिस प्रकार दन्त रहित कुत्ता हड्डीको केवल जीभसे चाटता रहता है उसी प्रकार वृद्ध मनुष्य भी विषयोंसे चिपटा रहता है ।

नोपभोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयान् जरी ।
अस्थि निर्दशन श्वेव जिह्वया लेढि केवलम् ॥२९२॥

जिन पुरुषोंके अन्तः करणका भावशुद्ध नहीं है उनका यज्ञ, वनवास, तप आदि सब झूठे हैं।

अग्निहोत्रं वने वासः शरीरपरिशोषणम्।
सर्वाण्येतानि मिथ्यास्युर्यदि भावो न निर्मलः ॥२६३॥

तीनों लोकोंमें चरित्रसे बढ़कर जीवन निर्वाहका सुखमार्ग दूसरा नहीं है। चरित्र गठनमें दान, मित्रता, भूतदया व मधुर भाषण से बढ़कर और कोई सद्व्यवहार नहीं है।

न हीदृशं संवहनं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
दानं मैत्री च भूतेषु दया च मधुरा च वाक्॥२६४॥

सद्व्यवहारका ध्यान ऐसा दृढ़ और स्थिर रखना चाहिये, जैसे कि योगी विषयोंका पर्यवेक्षण करते हुये भी ब्रह्मबुद्धिको स्थिर रखते हैं, एवं संगीत, ताल वाद्यके अनुसार नृत्य करती हुई भी नटी जैसे अपने सरपर रखे हुए घटका ध्यान रखती है।

पुंखानुपुंख विषयेक्षण तत्परोऽपि
ब्रह्मावलोकनधियं न जहाति योगी।
संगीततालल यवाद्यवशं गताऽपि
मौलिस्थ कुंभ परिरक्षणधीर्नटीव ॥२६५॥

दुष्टोंके संगसे सद्वृत्तमें बाधा आती है, इनसे बचना चाहिये। उदाहरणार्थ खटमल जैसे छोटेसे दुष्ट जीवसे बचनेके लिये दैव शक्ति भी एकान्तका आश्रय लेती हैं। किसी कविने इस विषयमें कैसी भावना व्यक्त की कि खटमलके काटनेके डरसे लक्ष्मी कमलमें जलके अन्दर शयन करती है, शिवजी हिमालयमें सोते हैं और भगवान् विष्णु क्षीर सागरमें शयन करते हैं यह कितना व्यावहारिक

सत्य है। पलंगके पायोंके नीचे जलकी कटोरियाँ रख देनेसे खटमलोंसे त्राण मिल जाता है।

कमले कमला शेते हरः शेते हिमालये।
क्षीराब्धौ च हरिः शेते मन्ये मत्कुणशंकया ॥२६६॥

सदा सज्जनोंके साथ मित्रता ऐसी रखनी चाहिए जैसी जल और मृत्तिकाकी होती है। जबतक जल रहता है मृतिका सरस रहती है और जल सूखनेपर मृत्तिका फट जाती है।

करोतु तादृशीं प्रीतिं यादृशी नीरपंकयोः।
रविणा शोषिते नीरे पंको देहं विदारयेत् ॥२६७॥

जो स्वार्थ वश सज्जनोंसे मित्रता करते हैं, वे अन्तमें लज्जित होते हैं और धिक्कृत होते हैं। कैसी सुन्दर अन्योक्ति है कि चिरकाल तक आम्रपर क्रीड़ा करके आम्र फलोंका आनन्द लेकर दूसरे वृक्षोंपर यदि कोयल चली जाय तो, क्या उसे लज्जा न आवेगी। इसी तरह स्वार्थ सिद्ध होनेपर सज्जनोंकी मित्रता त्याग कर अन्यत्र जाने वाला व्यक्ति क्या समाजमें भले आदमियोंको मुँह दिखा सकता है? कभी नहीं!

सहकारे चिरं स्थित्वा सलीलं बालकोकिल।
तं हित्वाऽद्यान्यवृक्षेषु विचरन्न विलज्जसे ॥२६८॥

पर अनेक सज्जन ऐसे भी होते हैं जिनके आश्रयमें चिरकालतक रहा जाय तो वे नीरस हो जाते हैं। इसपर अन्योक्ति है कि—हे इक्षुकांड तुम सुन्दर हो, सदा मधुर हो, रससे भरे हुए हो और कामदेवके बाण भी हो। परन्तु तुममें एक बड़ा अवगुण यह है कि जो तुम्हारा सेवन करता है, तुम उसे रस देकर धीरे धीरे नीरस हो जाते हो।

कान्तोसि नित्यमधुरोऽसि रसाकुलोऽसि
क्षिश्चासि पञ्चशरकार्मुकमद्वितीयम् ।
इक्षो तवास्ति सकलं परमेकमूनं
यत्सेवितो भजसि नीरसतां क्रमेण ॥२९९॥

इसी अन्योक्तिके आधारभूत इक्षुको लेकर सज्जन-दुर्जन मैत्री का कैसा सुन्दर उदाहरण दिया गया है—

ईखके अग्रभागसे नीचे मूलकी तरफ जानेसे क्रमशः रसकी मात्रा बढ़ती जाती है और मूलसे ऊपर आते हुए रसकी मात्रा घटती जाती है। इसी प्रकार सज्जनोंकी मित्रता धीरे-धीरे बढ़कर अधिक आनन्द देती है किन्तु दुर्जनोंकी मैत्री प्रारंभमें आनन्द देती है और अन्तमें नीरस होकर दुःख देती है।

इक्षोरग्रात् क्रमशः पर्वणि पर्वणि यथा रसविशेषः ।
तद्वत्सज्जनमैत्री विपरीतानां च विपरीता ॥३००॥

इसी भावको दिनका उदाहरण देकर व्यक्त किया है कि दुर्जनों की मित्रता दिनके पूर्वार्धकी छायाकी तरह एकदम बढ़ती है और धीरे धीरे क्षीण हो जाती है किन्तु सज्जनोंकी मित्रता अपराह्नकी छायाकी तरह पहले छोटी होती है और फिर धीरे धीरे बढ़ती है।

आरंभगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥३०१॥

मित्र वही उत्तम है जो मांस-मूत्र-पुरीषास्थि निर्मित नष्ट होने वाली शरीरकी आस्था छोड़कर यशकी रक्षा करता है।

मांसमूत्रपुरीषास्थि निर्मितेऽस्मिन् कलेवरे ।
विनश्वरे विहायास्थां यशः पालय मित्र मे ॥३०२॥

मित्रता प्रेम या सौहार्द्र होनेपर भी शस्त्रधारी पुरुषका विश्वास न करे, न स्त्रियोंमें विश्वास करे और न राजकुलमें विश्वास करे। ये सहजमें ही विश्वास घात कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त तैरने की शक्ति रहते भी नदीके प्रवाहका भरोसा न करे और न नख तथा सींग वाले पशु–पक्षियोंका विश्वास करें।

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥३०३॥

सब लोगोंके स्वभावकी ही परीक्षा की जा सकती है। क्योंकि सब गुणोंको तिरोहितकर स्वभाव ही प्रमुख होता है।

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः।
अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते ॥३०४॥

जिस स्थानपर उत्तम विद्वान् सज्जन न मिले, वहाँ अल्प गुण वाला भी प्रशंसनीय समझा जाता है। जैसे कि जहाँ वृक्षोंका अभाव हो वहाँ एरंडका वक्ष भी गनीमत (बहुत श्रेष्ठ) समझा जाता है। इसलिये जो अपेक्षाकृत उत्तम पुरुष मिले उसीसे मित्रता कर लेनी चाहिये।

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाध्यस्तत्राल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते ॥३०५॥

संसारमें कोई किसीका मित्र और शत्रु नहीं है। व्यवहारसे ही शत्र मित्र पैदा होते हैं। अतः व्यवहार शुद्ध रखनेका सदा यत्न करें।

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तथा ॥३०६॥

जो मित्र पीठ पीछे आपके कार्यकी हानि करे और सामने आने

पर मधुर भाषण कर मित्रता प्रकाशित करे, ऐसे पेटमें विष और मुंहमें मधुर दूधसे भरे घट जैसे मित्रोंसे सदा बचे रहें।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम् ॥२०७॥

राजा, कुल वधू, ब्राह्मण, मंत्री, स्तन, दाँत, केश, नख और मनुष्य स्थान भ्रष्ट होनेपर शोभा नहीं देते हैं। अतः किसी न किसी स्थानपर प्रतिदिन रहनेका प्रयत्न करें।

राजा कुलवधूर्विप्रा मन्त्रिणश्च पयोधराः।
स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ॥२०८॥

सज्जन व मित्रकी परीक्षा यह है कि वह सूर्प (छाज) की तरह गुणोंका ग्रहण करता है और दोषोंको झटक देता है। दुर्जन पुरुष चलनीकी तरह अच्छे गुणोंको त्याग कर बुराइयोंका ही संचय करता रहता है। क्या सुन्दर उदाहरण है। प्रत्येक घरमें स्त्रियोंको सूर्प और चलनीका प्रयोग करते मनुष्य देखता है, परन्तु उससे सबक़ नहीं सीखता है। स्त्रियाँ सूर्प से धान आदिको फटककर साफ़ करके रद्दीको फैंक देती हैं और सारद्रव्यका संग्रह कर लेती हैं तथा चालनीसे चालकर अच्छी चीजको निकाल लेती हैं किन्तु खराब चीजको चलनीमें बचा लेती हैं।

त्यजन्ति सूर्पवत् दोषान् गुणान् गृह्णन्ति साधवः।
दोषग्राही गुणत्यागी चालिनीवद्धि दुर्जनः ॥२०९॥

अनेक पुरुष जब तक वार्तालाप नहीं करते, तब तक उनकी असलियतका पता नहीं लगता है। उसको समझानेके लिये कविने अन्योक्ति कही है कि काक कोयलके साथ पलता है। शकल भी

प्राय: वैसी ही होती है परन्तु बोलते ही "काकः काकः पिकःपिकः" का पता लग जाता है।

तुल्यवर्णच्छदः कृष्णः कोकिलैः सह संगतः ।
केन विज्ञायते काकः स्वयं यदि न भाषते ॥३१०॥

बुरा आदमी हर तरहसे सजाया जानेपर भी अपनी असलियत नहीं छोड़ता है। काककी चोंचको सोनेसे मढ़ दी जावे, पैरोंमें माणिक्य सजा दिये जावें एवं परोंपर गजमुक्ता लगा दी जाय तो भी वह राजहंस नहीं हो सकता।

काकस्य गात्रं यदि काञ्चनस्य-
माणिक्यरत्नं यदि चञ्चुदेशे ।
एकैकपक्षे ग्रथितं मणीनां
तथाऽपि काको न तु राजहंसः ॥३११॥

दुर्जन पुरुषके साथ मित्रता या प्रेम करनेसे दुःख ही दुःख होता है। जैसे जलते अङ्गारको स्पर्श करनेसे हाथ जलता है तो शीतल अङ्गारको छूनेसे भी हाथमें कालिमा तो लग ही जाती है।

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥३१२॥

हाथकी शोभा दानसे होती है, कंकण पहिननेसे नहीं; शरीर की शुद्धि चन्दन लगानेसे नहीं होती वह स्नानसे ही हो सकती है। सज्जनोंकी तृप्ति सम्मानसे होती है भोजन करनेसे नहीं, मुक्ति ज्ञान से ही हो सकती है मुंड मुंडानेसे नहीं।

दानेन पाणिर्न तु कंकणेन-
स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन ।

मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन
ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मुंडनेन ॥३१३॥

बिना व्याकरणानुसार शुद्ध की हुई भाषा बोलनेसे मनुष्यकी हँसी होती है। बिना नमकके भोजन अस्वादु होता है। और बिना अभ्यासके तीर चलाने वाले का निशाना न लगनेसे हँसी होती है। निष्कर्ष यह है कि बिना उपयुक्त ज्ञान और अभ्यासके जीवनमें सफलता नहीं मिलती, केवल हँसी अवश्य होती है।

व्याकरणेन विना वाणी भोजनं लवणं विना।
विनाभ्यासेन धानुष्कश्चयो हास्यस्यभाजनम् ॥३१४॥

वृक्षोंको काटकर, पशुओंको मारकर, रक्तका कीचड़ करनेसे स्वर्ग मिलता है तो फिर नरक किससे मिलता है। हरे वृक्षोंका काटना और पशुओंका मारना पाप है।

वृक्षांश्छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरकं केन गम्यते ॥३१५॥

व्यभिचार करनेसे कुंभीपाक नरकमें जाना होता है इसीको अनुभवी कहता है कि इतिहास पुराण सत्य है तो हे भामिनि! आपका और हमारा मिलना कुंभी पाकमें होगा।

इतिहासपुराणानि यदि सत्यानि भामिनि।
आवयोः संगमस्तर्हि कुंभीपाके भविष्यति ॥३१६॥

संसारमें चिकित्सा शास्त्र, मंत्र शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र पद पद पर फल दिखाते हैं। शेष शास्त्र विनोद मात्र हैं। उनसे फल प्राप्ति तत्क्षण कुछ नहीं होती।

अन्यानि शास्त्राणि विनोदमात्रम्
प्राप्तेषु वा तेषु न तैश्च किञ्चित् ।
चिकित्सितज्योतिषमंत्रवादाः
पदे पदे प्रत्ययमावहन्ति ॥३१७॥

पंचभूतोंमें जीवधारी श्रेष्ठ है जीवधारियोंमें बुद्धि जीवी उत्तम है, बुद्धिमानोंमें मनुष्य श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें कृतबुद्धि (चतुर) उत्तम है।

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनो बुद्धि जीविनः ।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु कृतबुद्धयः ॥३१८॥

कृत बुद्धि वही पुरुष समझे जा सकते हैं, जो अपना सांसारिक कार्य बिना किसीकी चापलूसीके अपने बुद्धि बलसे चलाते हैं। किसी कविने अन्योक्तिसे कहा है कि हे हरिण ! तू किसी धनिक पुरुषका मुँह नहीं ताकता है। न झूठी खुशामद करता है, न उनकी गर्वोक्तियोंको सुनता है और न किसी अर्थ प्राप्तिके लिये उनके पीछे दौड़ता है। समय पर कोमल तृणोंको खाकर निद्रा आनेपर सो जाता है। भाई हमें भी तो बताओ कि तुमने कहाँ और कौनसा तप किया है जिससे तुम मस्त रहते हो।

यद् वक्त्रं मुहुरीक्षसे न धनिनां ब्रूते न चाटून्मृषा
नैषां गर्ववचः शृणोति न च तान् प्रत्याशया धावसि ।
काले बालतृणानि खादसि परं निद्रासि निद्रागमे
तन्मे ब्रूहि कुरंग ! कुत्र भवता किं नाम तप्तं तपः ॥३१९॥

यदि किसी कारणसे कोई व्यक्ति अपमान करदे तो उससे दुःखी न होकर उस कारणको मिटाकर और उच्च स्थान तथा सम्मानको

प्राप्तकर अपमान करने वालेको अपना महत्त्व दिखाना चाहिये। इसी भावको व्यक्त करनेके लिये नीचे लिखे पद्यमें अन्योक्तिसे कवि कहता है कि हे चंपक पुष्प! मलिन आशय वाले भ्रमर ने तेरा अपमान किया है तो उससे तुम क्यों दु:खी होते हो। तुम्हारा तो हे मित्र! लोकाभिराम ललनाओं ने अपने केश पासमें भूषणकी तरह शोभा देनेका उपयोग कर सम्मान किया गया है।

यन्नादृतस्त्वमलिना मलिनाशयेन
किं तेन चंपक विषादमुरीकरोषि।
लोकाभिरामललनाकुलकेशपाशे
प्राप्तः सखेत्वमसि भूषण भूषणत्वम् ॥३२०॥

यहाँके ब्राह्मणोंने संसारमें अपना आधिपत्य स्थापितकर सबको अपने अपने उचित धर्मकी शिक्षादी और उनसे लोगोंने अपने अपने धर्म सीखे हैं। इस अभिप्रायका निम्न पद्य है।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥३२१॥

किन्तु यह स्मरण रहे ब्राह्मणोंने माँगनेका कार्य अपनाकर अपनेको बहुत नीचे गिरा दिया है। इनके साथ आजकल अनेक अन्य जातियां भी छलसे माँगनेका धन्धा करने लग गई हैं। इनसे सावधान रहें। साथ ही मांगनेके समय यह भी ध्यान रखें कि अनेक व्यवसायी पैसा लेना जानते हैं किन्तु देना उनके लिये संभव नहीं है। उनमेंसे कुछ व्यवसायियोंके नाम निम्न पद्यमें गिनाये गये हैं। किरात, कायस्थ, विलासिनी वैश्यायें, ज्योतिषी, वैद्य, ये लोग मरते हुयेसे भी पैसा निकालनेकी इच्छा रखते हैं। ये दूसरोंको क्या दे सकेंगे।

किरातकायस्थविलासिनीनां
का दानशक्तिः परवञ्चकानाम् ।
वैद्योऽपि किं दास्यति याचकेभ्यो
यो मृतु कासादपि हर्तुं कामः ॥३२२॥

यह भी चिन्तनीय है कि पैसा कहांसे दे ? खाने ही को पूरा होना कठिन हो रहा है। किसी दुःखी पंडित ने सच कहा है कि घी असली कहां पर है इसका पता लगाना कठिन हो गया है, दही रुपयेका एक सेर है, कौन इसे देखनेको भी ले सकता है ? दूध तो चायकी प्यालीमें एक चम्मच मिलानेको भी कठिनाईसे मिलता है। होटलोंमें तो विलायती दूधके पाउडरसे बना दूधके रंगका श्वेत जल ही मिलता है। कहां तक कहें छाछका भी मिलना तो इन्द्र भगवान् को भी दुर्लभ हो गया है।

घृतं न श्रूयते कर्णे दधि स्वप्ने न दृश्यते ।
मुग्धे दुग्धस्य का वार्ता तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ॥३२३॥

प्राचीन कालके चिकित्सकोंने नीरोग रहनेके तीन उपाय बताये थे, वे दूध, छाछ आदि न मिलनेसे निरर्थक हो रहे हैं। क्या देशके संरक्षक इसपर ध्यान देंगे। भोजनके बाद तक्रका पान करे, सायंकाल भोजनोत्तर दूध पीये और प्रातःकाल शौचजानेके पूर्व पानी पीये, इससे शारीरिक रोग नहीं होते हैं। परीक्षणीय है।

भोजनान्ते पिबेत् तक्रं वासरान्ते पयः पिबेत् ।
निशान्ते च पिबेद्वारि त्रिभि रोगो न जायते ॥३२४॥

निरोग शरीर ही से मनुज्य कविताका और वनिताका आनन्द ले सकता है। कवि काव्य करता है, परन्तु आनन्द पंडित लोग

लेते हैं। इसी प्रकार पिता पुत्रीको जन्म देकर पालन-पोषण करता है, परन्तु उसका रति सुख देनेके चातुर्य्यका भोग जामाता करता है।

कविः करोति काव्यानि रसं जानन्ति पंडिताः।
सुन्दर्या अपि लावण्यं पतिर्जानाति नो पिता ॥३२७॥

इस प्रकारके अनेक जीवन वैषम्यको देखकर चार शास्त्र बनाये गये। जिनके स्वाध्यायसे मनुष्य संसार चक्रको भली प्रकार से चला सकता है, प्रथम आन्वीक्षिकी=(वैज्ञानिक शिक्षण), द्वितीय त्रयी=ऋक्, यजुः, सामवेदका ज्ञान अर्थात् धार्मिक शिक्षण, तृतीय वार्ता=अर्थशास्त्रपरक ज्ञानोपार्जन। चतुर्थ दंडनीती=राजनीतिका अध्ययन। इतना ज्ञान प्राप्त करनेपर लोककी स्थिति सुचारु रूपसे रह सकती है।

आन्वीक्षिकी त्रयीवार्ता दंडनीतिश्च शाश्वती।
विद्या ह्येताश्चतस्रस्तु लोकसंस्थितिहेतवः ॥३२८॥

इन विद्याओंका ज्ञान होनेपर भी संसारका नाश करने वाले दैवी प्रकोप और राज संघर्ष भी ज्ञातव्य है। इन्हें छः ईतियाँ कहते हैं। वे ये हैं—(१) अतिवृष्टि, (२) अनावृष्टि, (३) मूषक, (४) शलभ (टिड्डियाँ), (५) शुक (तोते), (६) राजाओंका अत्यन्त सामीप्य होना अर्थात् शत्रु राजाओंके द्वारा अपने राष्ट्रपर आक्रमण होना।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः ॥३२९॥

यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जहाँ स्त्री मालिक हो, राजा

बालक हो और मंत्री निरक्षर हो, वहाँ धन प्राप्तिकी आशा करना भूल है; वहां तो जीवन आशा भी दुर्लभ होजाती है।

अबला यत्र प्रबला बालो राजा निरक्षरो मन्त्री।
नहि नहि तत्र धनाशा जीवित आशापि दुर्लभा भवति॥३३०॥

स्त्रियोंका प्रभाव मनुष्यके मनपर बड़ा ही उग्र (तीव्र) होता है शिव, ब्रह्मा और विष्णु भगवान्‌को भी जिन्होंने गृह कर्मदास बना दिया। इसका कारण काम विकार है कामका स्वरूप बड़ा विचित्र है, जिसका चित्रण करना संभव नहीं है। ऐसे कुसुमायुध (काम) को नमस्कार है।

शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः।
वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥३३१॥

पर इसका स्वरूप भी पंडितोंने जान लिया है यह काम संकल्प से पैदा होता है। संकल्प ही न होने दो, काम स्वयं नष्ट हो जावेगा।

काम जानामि ते रूपं संकल्पात् किल जायसे।
न ते संकल्पयिष्यामि समूलस्त्वं विनंक्ष्यसि ॥३३२॥

कामुक पुरुष स्त्रियोंके साथ साधारण बातमें भी काम प्रदर्शक अर्थ निकाल कर स्त्रीको आकृष्ट करते हैं। इसका ध्यान रखकर संकल्पको काम वासनासे बचाना चाहिये। निम्न पद्यमें कैसी श्लेषोक्ति की है, यह विचारणीय है। पत्नी कहती है पतिको कि हे नाथ? आकाशपर मेघ देखिये यहां मेघ शब्दका काम प्रवर्तनके लिये पति अर्थ करता है मेऽघम् अर्थात् मेरा पाप देखिये और

कहता है नहीं तुम तो पुण्यात्मा हो तुम्हारा पाप कहाँ है। तब स्त्री कहती है "पयोधर" (जल भरे मेघको) देखिये, मेरा पाप यह अर्थ नहीं तो पति महाराज कहते हैं कि अपने सीनेसे कञ्चुकी हटादे जिससे तुम्हारे पयोधर (स्तनों) को देखूं। ऐसी बातें करना कभी कभी ठीक है पर कामवृद्धि कारक है, अत: इनसे बचना चाहिये।

नाथ विलोकय मेघं नहि नहि पापं तवातिपुण्यायाः।
नहि कथयामि पयोधरमपसारय कञ्चुकीमुरसः ॥३३३॥

काम संकल्पकी प्रबलतासे उत्तेजना हो जावे तो अश्विनी मुद्रा करके उसे शान्त करना चाहिये। अन्यथा वीर्य पातसे दुर्बलता होगी। अश्व जैसे मलत्याग करनेके बाद गुदाका संकोच करता है, इस प्रकार मनुष्य उत्तेजना होनेपर अपनी गुदाका संकोच करनेका अभ्यास करले तो वीर्य पात न होगा और शक्ति बढ़ेगी।

आकुंचयेत् गुदद्वारं प्रकाशयेत्पुनः पुनः।
सा भवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥३३४॥
अश्विनी परमामुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी।
बलपुष्टिकरी चैव साऽकाल मरणं हरेत् ॥३३५॥

वीर्य रक्षा करनेके लिये संसारके कार्योंमें वैराग्य आवश्यक है। जिस योनिसे पैदा हुए उस जैसी योनिमें पुनः सन्तान पैदा-करनेके लिये रतिकी, जिस स्तनका दूध पिया उसी प्रकारके स्तनों का मर्दन किया। इसमें आसक्त होना कौनसी बुद्धिमानी है। यह तो पशु धर्म सब जीवोंमें समान है। मनुष्यकी विशेषता तो विवेक बुद्धिमें है।

यत्र जाता रतास्तत्र यौ पीतौ तौ च मर्दितौ ।
अहो लोकस्य मूर्खत्वं वैराग्यं नोपजायते ॥३३६॥

स्त्रियोंके संगम और विरहमें भेद दर्शन करनेपर संगमकी अपेक्षा विरह अच्छा है। क्योंकि संगममें तो वह अकेली ही मिलती है पर विरहमें व्याकुल हुआ पुरुष तो सारे त्रिभुवनको ही तन्मय देखता है।

संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्य ।
संगे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ॥३३७॥

नर नारीका सारा प्रेम काम कला पर निर्भर है। शिवजीका अपराधकर कामदेव अपनी रक्षाके लिये स्त्रीके जंघान्तरालमें आकर गुह्येन्द्रिमें प्रवेश कर गया किन्तु शिवजीने पुरुषोंको ऐसा कामध्वज दिया कि उससे वहाँ पर भी धड़ाधड़ चोट गिरती हैं। महा पुरुषोंके अपराध करने वालेको कहीं भी सुख नहीं मिलता है।

मारस्त्रिलोचनभयान्मृगलोचनानां
प्राप्तस्तनौ जघनयोर्द्वयमध्यभागम् ।
तत्रापि तं सरभसं प्रहरन्ति सर्वे
न क्वापि सौख्यमपराध कृतां प्रभूणाम् ॥३३७॥

किसी किसी पंडितने पंडितोंको लिङ्ग और वृषणकी उपमा देकर और राजद्वारको भगकी उपमासे अलंकृत किया है। जिस विल्हण नामक पंडितको प्रवेश नहीं मिला, उसे वृषण कहा है।

राजद्वारे भगाकारे विशन्ति प्रविशन्ति च ।
लिङ्गवत् पंडिताः सर्वे विल्हणो वृषणायते ॥३३८॥

संसारमें धन प्राप्त होते ही मनुष्यकी वृत्तियां विकल हो जाती हैं। इसलिये कवि कहता है कि इन्द्रियोंके धर्म जब विचलित नहीं होते हैं तभी इन्द्रियोंका होना सार्थक है, बुद्धि और वाणी अपना स्वभाव विकृत न होने दें तभी उनकी महत्ता है, पुरुष धनके गर्वसे वंचित रहे वही पूजनीय पुरुष है। अन्यथा धन गर्वसे सब विकृत हो ही जाते हैं।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेवनाम
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
ह्यन्यःक्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥३३९॥

इस दुनियांमें धनवानोंके अनजान भी स्वजन हो जाते हैं और दरिद्रोंके स्वजन भी दुर्जन हो जाते हैं।

इहलोके हि धनिनां परोऽपि स्वजनायते।
स्वजनोऽपि दरिद्राणां सर्वदा दुर्जनायते ॥३४०॥

जब तक मनुष्यकी संसारमें कीर्ति है, तब तक वह श्रेष्ठ पुरुष स्वर्ग लोकमें आनन्द भोगता है।

यावत् कीर्त्तिर्मनुष्यस्य पुण्यलोके प्रतीयते।
तावत् स पुरुष व्याघ्रः स्वर्गे लोके महीयते ॥३४१॥

धनवान् होकर दान न करने वाला पुरुष और दीन होकर तपस्या न करने वाला पुरुष गलेमें मजबूत पत्थर बांध कर पानीमें डुबाने लायक है।

द्वाविमावम्भसि क्षेप्यौ गाढं बद्ध्वा गले शिलाम् ।
धनी चेदप्रदाता स्याद्दरिद्र श्चाप्य तापसः ॥३४२॥

राजाका चित्त, कृपण पुरुषका वित्त, दुर्जन पुरुषोंके मनोरथ, स्त्रियोंका चरित्र और पुरुषका भाग्य इन्हें देवता भी नहीं जान सकते, फिर पुरुष कैसे जाने ?

नृपस्य चित्तं कृपणस्य वित्तं
मनोरथान् दुर्जनमानवानाम् ।
स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥३४३॥

बिल्ली कहती है कि विशेष कर दरिद्र पुरुषको उद्योग करना चाहिये। देखो मैं उद्योग करके नित्य दूध पीती हूँ, यद्यपि मेरे घरमें गाय नहीं है ।

उद्यमः खलु कर्त्तव्यो दरिद्रैस्तु विशेषतः ।
धेनुर्ममगृहे नास्ति नित्यं दुग्धं पिबाम्यहम् ॥३४४॥

जीवनको नवीन और नीरोग रखनेके लिये सब प्रकारके पदार्थोंको नवीनकी तरह देखनेकी प्रकृति बनावो चाहे वे द्रव्य जीर्ण, भिन्न, श्लथ, क्षीण और क्षुब्ध हों ।

जीर्णं भिन्नं श्लथं क्षीणं क्षुब्धं क्षुण्णं क्षयं गतम् ।
पश्यामि नववत्सर्वं तेन जीवाम्यनामयम् ॥३४५॥

गुणोंमें सबके बराबर होनेपर भी बिना आश्रय वाला कष्ट पाता है, माणिक्य सर्व प्रकारसे सुन्दर होनेपर भी उसे स्वर्णके आश्रयकी आवश्यकता होती है ।

गुणैः सर्वत्र तुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः ।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते ॥३४६॥

नापितके घर जाकर हजामत बनवाना, पाषाणको गंध लगाकर पूजा करना, और अपनी आकृति पानीमें देखना इन बातोंसे इन्द्रकी भी श्री (शोभा) नष्ट हो जाती है।

नापितस्यगृहे क्षौरं पाषाणे गंधलेपनम् ।
आत्मरूपं जले पश्यन् शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥३४७॥

असत् पुरुषके शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा करने पर भी उसपर विश्वास नहीं कर सकते। उसकी बात तो पानी पर लिखे अक्षरके समान होती है। किन्तु सत् पुरुष हँसी मजाकमें भी प्रतिज्ञा करता है तो उसे निभाता है। उसका वाक्य तो पत्थरकी लकीर सा अमिट होता है।

असद्भिःशपथेनोक्तं जले लिखितमक्षरम् ।
सद्भिस्तु लीलया प्रोक्तं शिलालिखितमक्षरम् ॥३४८॥

जो पुरुष जिस कार्यमें कुशल हो, वही कार्य उसको देना चाहिये। अन्यथा शास्त्रीय ज्ञान वाला पुरुष भी कर्म कुशल न हो तो कार्य करनेमें मोहित (ज्ञान शून्य) होता है।

यो यत्र कुशलः कार्ये तं तत्र विनियोजयेत् ।
कर्मस्वदृष्टकर्मा यः शास्त्रज्ञोऽपि विमुह्यति ॥३४९॥

यदि संसारमें सफलता प्राप्त करना चाहते हो तो राजा, अग्नि गुरु और स्त्रियोंको मध्यम वृत्तिसे सेवन करना चाहिये। "न काहूसे दोस्ती और न काहूसे बैर" का सिद्धान्त ध्यानमें रखकर इन लोगोंके साथ घनिष्ठता न करे।

सेव्यन्तां मध्यभावेन राजावह्निर्गुरुः स्त्रियः ।
यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ॥३५०॥

संसारमें सुखी रहनेके लिये लोभ, मोह और जिह्वासे रसास्वादनका सुख इन तीनोंको छोड़दें क्योंकि लोभ पापोंकी जड़ है। रसास्वाद रोगका मूल है और स्नेह दुःखका कारण है।

लोभ मूलानि पापानि रसमूलानि व्याधयः ।
इष्टमूलानि दुःखानि त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भव॥३५१॥

परान्न, परस्त्रीका सेवन, पराया वस्त्र, पराई शय्या और पराये घरका वास ये बातें इन्द्रकी कान्तिको भी नष्ट कर देती हैं।

परान्नं परवस्त्रं च परशय्या परःस्त्रियः ।
परवेश्मनि वासश्च शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥३५२॥

संसारमें प्रत्येक कार्यमें सहायककी आवश्यकता होती है। चांवल भी अपने तुषों से पृथक् करनेपर अंकुर उत्पन्न नहीं कर सकता है।

सहायेन विना नैव कार्यं किमपि सिद्धयति ।
तुषेणापि परिभ्रष्टस्तन्डुलो नाङ्कुरायते ॥३५३।

जिसका पुत्र विद्वान्, शूरवीर, या धर्मात्मा न हो उसका कुल कभी प्रकाशमें नहीं आ सकता, वह तो अन्धकारमें लुप्त हो जाता है जैसे बिना चन्द्रमाकी रात्रि अन्धकार मय होती है।

यस्य पुत्रो न वै विद्वान् न शूरो न च धार्मिकः ।
अप्रकाशं कुलं तस्य नष्टचन्द्रेव शर्वरी ॥३५४॥

शूरवीर, विक्रमशाली, विज्ञ और पण्डित संसारके कार्य बिना भाग्यका भरोसा किये ही करते रहते हैं।

ये शूराः ये च विक्रान्ता ये प्राज्ञा ये च पंडिताः।
तैस्तैः किमपि लोकेऽस्मिन् वद दैवं प्रतीक्षते॥३५५॥

संसारी जीव उसी मनुष्यकी सहायता करते हैं जो कर्मसे, मनसे, वचनसे और प्रेमकी निगाहसे उन्हें प्रसन्न करता है।

कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषापि चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोको नु प्रसीदति॥३५६॥

एक एक बूँदकी आयसे जलका घड़ा धीरे धीरे भर जाता है। इसी प्रकार विद्या, धर्म, और धन भी संचित करनेसे पूर्णताको प्राप्त हो जाते हैं।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च॥३५७॥

महात्मा पुरुषोंकी प्रकृति ही ऐसी सिद्ध होती है कि वे विपत्ति के समयमें धैर्यवान होते हैं, अभ्युदय होनेसे क्षमा प्रदर्शित करते हैं, सभामें अवसर आनेपर अपनी वाक्पटुता दिखाते हैं, युद्धके समय पराक्रम प्रदर्शित करते हैं, सदा यशकी प्राप्तिके लिये अभिरुचि रखते हैं और शास्त्रके अध्ययनका व्यसन बनाते हैं।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥३५८॥

मनुष्यको उचित है कि सदा अपने चरित्रकी परीक्षा करता रहे और बारीकीसे देखे कि क्या पशुवृत्तिकी तरफ जारहा है या सत्पुरुषोंके चरित्रका अनुकरण कर रहा है।

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः।
किन्नु मे पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिति ॥३५९॥

संसारकी व्यथाको दूर करनेके लिये विधिपूर्वक भगवानका भजन नहीं किया, न स्वर्गके कपाट खोलने वाले धर्मका आचरण किया, चंचल मन वाली सुन्दरियोंका भोग भी नहीं किया, हमतो केवल माताके यौवन रूपी वनको नाश करनेके लिये कुल्हाड़े पैदा हुये ऐसे जीवनसे क्या लाभ।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसारविच्छित्तये
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः।
आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिंगिता
मातः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥३६०॥

किसी कार्यको प्रारम्भ न करना प्रथम बुद्धिका लक्षण है, प्रारम्भ करनेपर उसके अन्त तक जाना दूसरा बुद्धिमानीका लक्षण है।

अनारंभो हि कार्याणां प्रथमं बुद्धिलक्षणम्।
प्रारब्धस्यान्तगमनं द्वितीयं बुद्धिलक्षणम् ॥३६१॥

जिस मनुष्यको किसी कामको इन्कार करना है तो उसके छः प्रकार माने गये हैं—

(१) मौन रखना, (२) देरसे जवाब देना, (३) बात करते करते चल देना, (४) मांगको सुनकर जवाब न देकर केवल

जमीनकी तरफ ताकते रहना, (५) भौंह चढ़ाना, (६) दूसरी बातको छेड़कर मुख्य प्रश्नको उड़ा देना।

मौनं कालविलम्बश्च प्रयाणं भूमिदर्शनम्।
भृकुट्यन्यमुखीवार्ता नकारा षड्विधाः स्मृताः ॥३६२॥

मनुष्यको किये हुये शुभाशुभ कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है। कृत कर्मोंका फल करोड़ों वर्षोंमें भी क्षय नहीं होता है॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
कृतकर्म क्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ॥३६३॥

अपनी शक्तिको समझे बिना पदोन्नतिकी इच्छा करने वाला पुरुष पतंगोंके दीपपर नष्ट होने जैसा प्रयत्न करता है।

अविदित्वात्मनः शक्तिं पदस्यच समुत्सकः।
गच्छन्नभिमुखो नाशं याति दीपे पतंगवत् ॥३६४॥

पृथ्वीपर तीन ही रत्न हैं। जल, अन्न और सुभाषित किन्तु मूर्ख लोग पाषाण खण्डोंको रत्न कहते हैं।

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखंडेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥३६५॥

ईश्वरमें भक्ति है, हृदयमें जन्म और मरणका भय नहीं है, बान्धवोंमें स्नेह भी नहीं है और न मनमें कामका ही विकार है, संसर्ग-दोषसे रहित निर्जन वनस्थली सेवन करनेको प्राप्त है। यदि ऐसा वैराग्य वर्तमान है तो इससे बढ़कर और क्या चाहिए?

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः।

संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ताः
वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम् ॥३६६॥

नीतिज्ञ लोग चाहे निन्दा करें अथवा प्रशंसा करें, लक्ष्मी (धन) चाहे आये अथवा बिल्कुल चली जावे, मृत्यु चाहे आज ही हो जाय अथवा दूसरे युगमें हो, पर धीर लोग न्याययुक्त मार्गसे कभी पैर नहीं हटाते हैं।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥३६८॥

यशके लिये या सुख पानेकी इच्छासे अथवा मनुष्य संख्याको अतिक्रमण कर देनेके लिये निस्पृहतापूर्वक तन्मय होकर काम करने वाले सज्जनोंकी गोदमें लक्ष्मी समुत्सुकताके साथ स्वयं आकर बैठती है।

यशोऽधिगन्तुं सुखलिप्सया वा
मनुष्यसंख्यामतिवर्तितुं वा।
अनुत्सुकानामभियोगभाजां
समुत्सुकेवाङ्कमुपैति लक्ष्मीः ॥३६९॥

विनाशशील प्राणोंको देकरके भी स्थायी यशको सञ्चित करनेकी इच्छा वाले स्वाभिमानी पुरुषोंके लिये विद्युत्के समान चञ्चल लक्ष्मी आनुषङ्गिक फल है।

अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नु यशश्चिचीषतः ।
अचिरांशुविलासचञ्चला ननु लक्ष्मीः फलमानुषङ्गिकम् ।३८०॥

जिन विद्वानोंका विद्यापर पूर्ण अधिकार है उनकी अवहेलना न करो। तिनकाके समान लघु लक्ष्मी उन्हें अवरुद्ध नहीं कर सकती। नवीन मदके द्वारा जिनका गण्डस्थल मत्त है ऐसे हाथियों को कमलके नालका तन्तु क्या रोक सकता है ?

अधिगतपरमार्थान् पण्डितान् मावमँस्था-
स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान् संरुणद्धि ।
अभिनवमदलीलामत्तगण्डस्थलानां
न भवति बिसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥३७१॥

विज्ञान, शूरता, विभव और आर्य-गुणोंसे युक्त होकर प्रसिद्धि के साथ एक क्षण भर जीना भी विद्वानोंकी सम्मतिमें जीना है अन्यथा कौवा भी बलि (कौर) खाकर अपना पेट पालता हुआ बहुत दिनों तक जीता है। अर्थात् बिना पूर्वोक्त गुणोंके केवल अपना उदर पोषण करते हुये, बहुत समय तकका जीना भी जीना नहीं कहा जा सकता, वह जीवन वस्तुतः व्यर्थ ही है।

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यै-
र्विज्ञानशौर्यविभवार्यगुणैः समेतम् ।
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते ॥३७२॥

जो बुद्धिकी जड़ताको दूर करती है, सत्य बोलनेके लिये तत्पर कराती है, सम्मान बढ़ाती है, पापको दूर भगाती है, चित्तको प्रसन्न

कराती है और चारों दिशाओंमें कीर्ति फैलाती है, इस प्रकारकी सज्जनोंकी सङ्गति कहो क्या क्या मनुष्योंका उपकार नहीं करती ?

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्सङ्गतिः कथय किन्न करोति पुंसाम् ॥३७३॥

सन्तप्त लौहके ऊपर पड़े हुए जिस जलका नाम निशान भी नहीं बचता (अर्थात् सब भस्म हो जाता है) वही कमलके पत्रके ऊपर पड़ा हुआ मोतीके समान चमकता है और वही स्वाति नक्षत्र के लगने पर समुद्रकी सीपके पेटमें पड़ा हुआ मोती बन जाता है। इस प्रकार सङ्गतिके अनुसार मनुष्यमें प्रायः अधम, मध्यम और उत्तम गुण उत्पन्न होते हैं।

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वातौ सागरशुक्तिकुक्षिपतितं तज्जायते मौक्तिकम्
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणाः सङ्गात्सतो जायते ॥३७४॥

गुणी जन गुणियोंकी सङ्गतिसे प्रसन्न रहते हैं, किन्तु बिना गुण वालोंको गुणियोंसे सन्तोष नहीं होता, देखो ! भ्रमर बनसे उड़कर कमल पर वास करता है, परन्तु मेंढक सहवासी होता हुआ भी उससे सम्बन्ध नहीं रखता।

गुणिनि गुणज्ञो रमते नागुणशीलस्य गुणिनि परितोषः ।
अलिरेति वनात् कमलं नहि भेकस्त्वेकवासोऽपि ॥३७५॥

गुणज्ञोंके पास गुण गुण ही होते हैं, किन्तु वे ही, निर्गुणियों के पास रहकर दोष हो जाते हैं। जैसे नदियाँ स्वभावतः मधुर जल वाली होती हैं, किन्तु समुद्रके साथ मिलनेसे अपेय (खारी) जल वाली हो जाती हैं।

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रभवन्ति नद्यः
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥३७६॥

अनेक रत्नोंको पैदा करने वाले उस पर्वतराज हिमालयकी शोभाको हिम नहीं नष्ट कर सका। क्योंकि गुणसमूहके बीचमें एक दोष इस प्रकार छिप जाता है जैसे चन्द्रमाकी शुभ्र किरणोंके बीचमें उसका कलङ्क (कालिमा)।

अनेकरत्नप्रभवस्य तस्य
हिमं न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ॥३७७॥

चन्द्रमाकी किरणोंके मध्यमें उसके कलङ्कके समान एक दोष भी गुणसमूहके बीच छिप जाता है, इस बातको जिस कवि ने कहा है, वस्तुतः उसने यह कदापि नहीं सोचा कि एक ही दारिद्र्य-दोष अनेक अच्छे गुणोंको नष्ट कर देता है।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोरिति यो बभाषे।

नूनं न दृष्टं कविनाऽपि तेन
दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ॥३७८॥

दरिद्रोंके मनोरथ हृदयमें उठ उठकर इस प्रकार लीन हो जाते हैं, जिस प्रकार कुलीन बाल-विधवाओंके शोक-सन्तप्त उरःस्थल पर उत्पन्न हुये कुच।

उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः।
बालवैधव्यदग्धानां कुलजानां कुचाविव ॥३७९॥

जो उत्साही है, दीर्घसूत्र (आलसी) नहीं है, कार्य करनेकी विधिको जानता है, किसी भी प्रकारके व्यसन (नशा) में आसक्त नहीं है, बहादुर है, किये हुये उपकारको मानता है और जिसकी मैत्री दृढ़ होती है, ऐसे सज्जनके पास रहनेके लिये लक्ष्मी स्वयं ही उपस्थित होजाती है।

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥३८०॥

दृढ़ प्रतिज्ञाके साथ संलग्न होकर काम करने वाले वीर पुरुष के लिये पृथ्वी आँगनकी वेदीके समान, समुद्र छोटी नाली (बरहा) के समान, गहरा पाताल स्थली (समतल भूमि) के समान और ऊंचा सुमेरु पर्वत साधारण बाँबीके समान हो जाता है। अर्थात् उसके लिये बड़ीसे बड़ी, कठिनसे कठिन वस्तु भी प्राप्त करना सरल है। उद्यमी पुरुषको अवश्य सिद्धि मिलती है।

अङ्गणवेदी वसुधा, कुल्या जलधिः, स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः, कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य ॥३८१॥

मनस्वी (उद्योगी) वीर पुरुषके लिये कौनसा अपना देश है और कौनसा पराया ? वह जिस देशमें जाता है उसी को अपने बाहुओंके प्रतापसे अपना बना लेता है। जैसे दाँत, नख और लांगूल (पूँछ) रूपी शस्त्र वाला सिंह जिस बनमें घुसता है उसीमें हाथियों को मार कर उनके रक्तसे अपनी तृष्णाको बुझाता है।

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशः स्मृतः
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम्।
यद् दंष्ट्रानखलांगुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्यात्मनः ॥३८२॥

स्वर्णमयी (धनसे पूर्ण) पृथ्वीको तीन प्रकारके मनुष्य खोजते हैं—शूरवीर, विद्वान् और जिन्हें सेवा करनेकी विद्या आती है।

सुवर्णपुष्पितां पृथ्वीं विचिन्वन्ति नरास्त्रयः।
शूराश्च कृतविद्याश्च ये च जानन्ति सेवितुम् ॥३८३॥

सज्जन लोग चाहे दूर भी रहें, पर उनके गुण उनकी ख्यातिके लिये स्वयं दूतका कार्य करते हैं। केतकी (केवड़ा) पुष्पके गन्धको सूँघकर भ्रमर स्वयम् उसके पास चले जाते हैं।

गुणाः कुर्वन्ति दूतत्वं दूरेऽपि वसतां सताम्।
केतकीगन्धमाघ्राय स्वयं गच्छन्ति षट्पदाः ॥३८४॥

ऐसा कोई ही विरला पुरुष त्रिभुवन-विजयी और धन्य है जो कि मौनियोंके बीच मौनी, गुणियोंके बीच गुणी, पण्डितोंके बीच पण्डित, मूर्खोंके बीच मूर्ख, युवतियोंके बीच युवा, श्रेष्ठ वक्ताओंके बीच श्रेष्ठ वक्ता, दीनोंके बीच दीन, सुखियोंके बीच सुखी, भोगियोंके बीच भोगी और धूर्तोंके बीच धूर्त होकर रहता है।

मौने मौनी, गुणिनि गुणवान्, पण्डिते पण्डितोऽसौ,
मूर्खे मूर्खो, युवतिषु युवा, वाग्मिषु प्रौढ़वाग्मी ।
दीने दीनः, सुखिनि सुखवान्, भोगिनि प्राप्तभोगः,
धन्यः कोऽपि त्रिभुवनजयी यो हि धूर्ते च धूर्तः ॥३८५॥

जहाँ पर बहुतसे नेता हैं, सभी अपने को पण्डित मानने वाले अहङ्कारी हैं और सब अपनी बड़ाई चाहते हैं वह समाज नष्ट हो जाता है ।

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः ।
सर्वे महत्वमिच्छन्ति तद् वृन्दमवसीदति ॥३८६॥

जो न विद्वान् हैं, न तपस्वी हैं, न दानी हैं, न ज्ञानी हैं, न उत्तम शील वाले हैं, न गुणी हैं और न धर्मिष्ठ हैं, वे इस मृत्युलोक में पृथ्वीके भार होते हुये मनुष्यरूप वाले पशु होकर रहते हैं ।

येषां न विद्या न तपो न दानं
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूताः
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥३८७॥

जो न अपने लिये, न गुरुजनोंके लिये, न बान्धवोंके लिये, न सेवकोंके लिये और न दीनोंके लिये दया-भाव रखता है, उसके जीनेका संसारमें क्या फल है ? यों तो कौवा भी बलि खाकर बहुत दिनों तक जीता है ।

यो नात्मने न च गुरौ न च बन्धुवर्गे,
दीने दयां न कुरुते न च भृत्यवर्गे ।

किं तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके,
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुङ्क्ते ॥३८८॥

खाने, सोने, डरने और मैथुनके बारेमें मनुष्य और पशु परस्पर समान हैं। केवल धर्म ही मनुष्योंमें विशेष है। यदि वह भी न रहा तो फिर मनुष्य सर्वथा पशुके समान ही है।

आहारनिद्राभयमैथुनानि
समानि हि स्युः पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥३८९॥

आओ आओ, इस आसनपर बैठो, बहुत दिनोंके बाद दिखाई पड़े क्या कारण है? क्या बात है? बहुत दुर्बल हो, कुशल तो है? तुम्हारे देखनेसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ इस प्रकार नीच जनोंके भी घर आनेपर उनसे सदा पूछना चाहिये। यह धर्म-शास्त्रसे प्रतिपादित बहुत सरल स्वर्गप्रद धर्म गृहस्थोंके लिये कहा गया है।

एह्यागच्छ समास्य चासनमिदं कस्माच्चिराद् दृश्यसे
का वार्ता ह्यतिदुर्बलोऽसि कुशलं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्।
एवं नीचजनेऽपि युज्यति गृहं प्राप्ते सतां सर्वदा
धर्मोऽयं गृहमेधिनां निगदितः स्मार्तो लघुः स्वर्गदः ॥३९१॥

उस सोने अथवा चाँदीके पहाड़से क्या फल? जहाँ पर पैदा होनेवाले वृक्ष यदि वैसेही वृक्ष रह गये। हमतो मलयाचल को ही विशिष्ट मानते हैं जिसपर पैदा होने वाले कंकोल नीम और कुटज (कोरैया) के वृक्ष भी चन्दनके समान सुगन्धित हो जाते हैं।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कङ्कोलनिम्बकुटजान्यपि चन्दनानि ॥३६१॥

वे भले मानुष लोग धन्य हैं जो दूसरेके दोषोंको छोड़कर गुणको ही खोजते रहते हैं। जैसे—मलयाचलके चन्दन-वृक्ष पर लिपटे हुये सर्पोंके विषको न ग्रहण कर वायु चन्दनकी सुगन्धिता को ही लेकर वहन करती है।

सौजन्यधन्यजनुषः पुरुषाः परेषां
दोषान् विहाय गुणमेव गवेषयन्ति ।
त्यक्त्वा भुजङ्गमविषं हि पटीरगर्भात्
सौगन्ध्यमेव पवनाः परिवाहयन्ति ॥३६२॥

कमल-पुष्पके दलके बीच रहनेवाला और उसके रसके मदसे मत्त यह भ्रमर भाग्यवश परदेश (कमल और तड़ाग रहित जङ्गल) में पहुँच कर कोरैयाके फूलोंके रस को ही बहुत समझ रहा है। अर्थात् कुसमय आपड़नेपर सुख सम्पत्ति-वाले पुरुषको भी जो कुछ मिल जाता है उसीपर निर्वाह करते हुये सन्तुष्ट रहते हैं।

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः कमलिनीमकरन्दमदालसः ।
विधिवशात्परदेशमुपागतः कुटजपुष्परसं बहु मन्यते ॥३६३॥

ब्रह्मा जी भी यदि क्रुद्ध हो जायें तो हंसके कमलिनी-बनमें रहनेके आनन्द को ही नष्ट कर सकते हैं, न कि उसके दूध और पानीको पृथक् पृथक् कर देने वाली प्रसिद्ध यशस्विनी स्वाभाविक शक्ति को। अर्थात् स्वामी यदि सेवकपर क्रुद्ध हो जाय तो उसकी जीविका को ही नष्ट कर सकता है, न कि उसके सद्गुण को।

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ।
न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥३९४॥

हे हंस ! यदि तुम दूध और पानीके विवेक (पृथक्करण) में आलस्य करते हो तो अब इस संसारमें परम्परागत कुलाचारका पालन कौन करेगा ?

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वेऽस्मिन्नधुनान्यः कुलवृत्तं पालयिष्यति कः ॥३९५॥

यदि होनहारके दूर करनेका उपाय होता तो राजा नल, राम और युधिष्ठिर दुःख न भोगते । अर्थात् होनहार होके ही रहता है ।

अवश्यंभाविभावानां प्रतीकारो भवेद्यदि ।
तदा दुःखैर्न लिप्येरन् नलरामयुधिष्ठिराः ॥३९६॥

भूखा मनुष्य कौनसा पाप नहीं कर सकता है ? अर्थात् भूखे को कर्त्तव्याकर्तव्यका ज्ञान नहीं रहता । और क्षीण (दुर्बल कृश) जन निर्दयी हो जाते हैं । यह कथा हितोपदेशमें वर्णित है ।

बुभुक्षितः किन्न करोति पापं
क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति ।
"आख्याहि भद्रे ? प्रियदर्शनस्य
न गङ्गदत्तः पुनरेति कूपम्" ॥३९७॥

कौन समय है ? कौन कौन मित्र हैं ? कौनसा देश है ? क्या खर्च है ? क्या आमदनी है ? कौन मैं हूँ और कितनी मेरी शक्ति है ? इस प्रकार नित्य बार बार सोचना चाहिये ।

कः कालः, कानि मित्राणि, को देशः, कौ व्ययागमौ ।
कश्चाहं, का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥३९८॥

कोई बात स्त्रीके प्रति गोपनीय होती है, कोई कुटुम्बियोंके प्रति, कोई मित्रोंके प्रति और कोई पुत्रोंके प्रति गोप्य होती है। कौनसी बात कहनेमें ठीक है और कौनसी नहीं ठीक है, इस प्रकार सोच कर तब समझदार पुरुषको बड़े अनुरोधके साथ बोलना चाहिये।

दारेषु किञ्चित्स्वजनेषु किञ्चित्
गोप्यं वयस्येषु सुतेषु किञ्चित् ।
युक्तं न वा युक्तमिदं विचिन्त्य
वदेद् विपश्चिन्महतोऽनुरोधात् ॥३९९॥

कुन्तीने (गर्भिणी) द्रौपदी को उपदेश दिया था कि भाग्यवान् पुत्रको पैदा करो, न कि शूरवीर और विद्वान् को। मेरे पुत्र शूरवीर और विद्वान् होते हुये भी भाग्यवान् न होनेसे वनमें भटकते हुये दुःख भोग रहे हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि शूरवीर और विद्वान् से भाग्यवान् अच्छा होता है।

भाग्यवन्तं प्रसूयेथाः मा शूरान् मा च पण्डितान् ।
शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदन्ति मामकाः ॥४००॥

वनमें रहनेपर भी रागासक्त पुरुषोंके दोष पैदा हो जाते हैं। घरमें रहते हुये भी पञ्चेन्द्रिय-निग्रह करना तप है। अनिन्दनीय कर्म करने वाले रागरहित पुरुषके लिये घर ही तपोवन है।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।

अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥४०१॥

बनावटी अयाल (सिंहके गर्दनका बाल) और भयानक सिंहका मुख लगाकर यदि कुत्ता जबरदस्ती सिंह की पदवीको प्राप्त कर ले तो भी मतवाले हाथियोंके मस्तकके उत्पाटनमें लोलुप सिंहके नाद को कैसे कर सकेगा ? अर्थात् अयोग्य पुरुष आडम्बर वश यदि किसी उच्च स्थानपर पहुँच भी जाय तो भी उस पदके महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन नहीं कर सकता ।

आबद्धकृत्रिमसटो विकरालवक्त्र :
प्राप्तो हठान्मृगपतेः पदवीं यदि श्वा ।
मत्तेभकुम्भदलपाटनलम्पटस्य
नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥४०२॥

छिटकी हुई केशर (अंयाल) और भयानक मुख वाले सिंह, अत्यन्त मतवाले गज और युद्धोंमें बहादुर, मेधाशक्ति सम्पन्न पुरुष भी स्त्रीके समीप अत्यन्त कायर हो जाते हैं ।

व्याकीर्णकेशरकरालमुखा मृगेन्द्राः
नागाश्च भूरिमदराजिविराजमानाः ।
मेधाविनश्च पुरुषाः समरेषु शूराः
स्त्रीसन्निधौ परमकापुरुषा भवन्ति ॥४०३॥

ऐ संसार तेरे निस्तारका मार्ग कठिन न हो, यदि मद भरे लोचन वाली दुस्तर स्त्रियां बीचमें विघ्न रूप न हों ।

संसार ! तव निस्तारपदवी न दवीयसी ।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्यदि रे मदिरेक्षणाः ॥४०४॥

महाभारत-युद्धके आरम्भमें कुन्तीने विदुरसे कहा कि जाकर अर्जुन और वृकोदर भीमसे कहो कि जिस लिये क्षत्रिय महिला पुत्रको पैदा करती है वह समय अब आगया। क्षत्रियोंकी सन्तान युद्धके लिये ही है।

गत्वा धनञ्जयं ब्रूहि भीमसेनं वृकोदरम्।
यदर्थं क्षत्रिया सूते सैष कालोऽयमागतः ॥४०५॥

जिसके पास धन है वही पुरुष कुलीन, पण्डित, बहुश्रुत, गुणज्ञ, वक्ता और दर्शनीय है कहाँ तक कहा जाय सब गुण धनके ही आश्रय रहते हैं।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥४०६॥

साहित्य और संगीत-कलासे रहित पुरुष बिना पूंछ और सींग के साक्षात् पशु हीहै। वह बिना तृण खाये हुये जो जीता है सो पशुओंका परम सौभाग्य है।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः
तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥४०८॥

कभी जमीनपर लेटना, कभी पलँगपर सोना, कभी कन्था (कथरी) औढ़ना, कभी बढ़िया वस्त्र पहिनना, कभी शाक ही खाकर रहना और कभी बारीक जड़हन चावलका भात खाना।

इस प्रकार यथावसर निर्वाह कर कार्यसिद्ध करने वाले मनस्वी (उत्साही वीर) लोग दुःख सुख कुछ नहीं गिनते। तात्पर्य यह कि मनस्वी लोग जिस प्रकार हो सके अपना कार्य सिद्ध करते हैं, क्या दुःख और क्या सुख है। इसका ध्यान बिलकुल नहीं करते।

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनम्
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरः।
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः
मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम् ॥४०८॥

धन (खजाना) पाजानेकी इच्छासे पृथ्वी-तलको खोद डाला किन्तु कुछ फल न मिला। जाति और कुलके अभिमानका परित्यागकर उचित सेवा की वह भी निष्फल हो गई। दूसरेके घर जाकर सशंक हो काकके समान मानरहित भोजन भी किया। तथापि ऐ दुर्मति पाप कर्ममें लगी हुई तृष्णे। तू अब भी नहीं सन्तुष्ट होती है ?

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं प्राप्तं न किञ्चित्फलम्
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचिता सेवा कृता निष्फला।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकवत्
तृष्णे? दुर्मति पापकर्मनिरते नाद्याऽपि सन्तुष्यसि ॥४०९॥

अनेक दुर्गम नीचे ऊंचे देशोंका परिभ्रमण किया, पर्वतोंमें उत्पन्न होने वाले धातुओंको फूँक डाला, समुद्रकोभी पार कर डाला तथा बड़े यत्नके साथ राजाओंको सन्तुष्ट किया और मन्त्रके आराधन करनेमें मन लगाकर श्मशानमें अनेकों रातें बिताई। किन्तु इतनेपर भी एक कानी कौड़ी भी न पाया। ऐ तृष्णे! अब तो मुझे छोड़ दे।

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः ।
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम् ॥४१०॥

गुणियोंकी गणना करते समय आरम्भमें ही जिसके प्रति शीघ्रताके साथ उंगली नहीं उठती, उस पुत्रसे यदि माता पुत्रवाली कहलाती है तो फिर बन्ध्या किसे कहें ? अर्थात् अयोग्य पुत्रके पैदा करनेसे तो बांझ रहना ही अच्छा है ।

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी ससम्भ्रमा यस्य ।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी भवति ॥४११॥

भिक्षाका अन्न वह भी नीरस और दिनमें एक बार, पृथ्वी ही शय्या, अपनी देह ही कुटुम्ब और फटी पुरानी कन्था (कथरी) ही पहिननेके लिये वस्त्र जिस मनुष्यके पास हैं, अफसोस ! तो भी उसे विषय नहीं छोड़ते ।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ।
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कन्था
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥४१२॥

ऐ नन्दनन्दन कृष्ण ! यदि तुमने मक्खन चुराकर पकड़ जाने की शङ्कासे भाग जाना ही स्वीकार कर लिया है तो मेरे अत्यन्त अन्धकारमय हृदयस्थलमें आकर क्यों नहीं छिप जाते ? अर्थात् भक्त भगवान्‌से प्रार्थना करता है कि आप मेरे अज्ञानमय हृदयमें निवास करें ।

क्षीरसारमपहृत्य शङ्कया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया ।
मानसे मम नितान्ततामसे नन्दनन्दन ! कथं न लीयसे ॥४१३॥

हे विष्णो ! आपका घर रत्नोंकी खानि क्षीरसागर है, आपकी पत्नी स्वयं लक्ष्मी ही है और आप स्वयं संसार भरके मालिक हैं, फिर आपके लिये कौनसी वस्तु देने योग्य है ? (अर्थात् कुछ भी नहीं, क्योंकि सब कुछ आपके पास वर्तमान है) आपके मनको लक्ष्मीजीने हर लिया है अतः केवल मनका ही अभाव है इसलिये मेरे मनको ले लीजिये वह आपके चरण कमलको समर्पित है ।

रत्नाकरस्तव गृहं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय ।
लक्ष्म्या गृहीतमनसा मनसोऽस्ति दैन्यं
तन्मे गृहाण पदपङ्कजमर्पितं ते ॥४१४॥

शिष्य लोगोंके द्वारा योग्य मनुष्यों को दी गई हुई विद्या गुरु को अधिक गुणवान् बना देती है। मेघके द्वारा सीपके अन्दर छोड़े हुये जलसे समुद्र रत्नाकर हो जाता है। अर्थात् शिष्य परम्पराद्वारा विद्याका प्रचार होनेसे आदि गुरुका गौरव बढ़ता ही जाता है ।

पात्रेषु शिष्यनिवहैर्विनियुज्यमाना
विद्या गुरुं हि गुणवत्तरमातनोति ।
आदाय शुक्तिषु बलाहकविप्रकीर्णै
रत्नाकरो भवति वारिभिरम्बुराशिः ॥४१५॥

दरिद्र पुरुषको देखकर कामातुर स्त्रियाँ भी दुर्गन्धित, कृमि-दूषित वस्तुके समान उसे छूना तक नहीं चाहती। अर्थात् दरिद्रता महा पाप है क्योंकि सांसारिक विषय सुख धनसे ही प्राप्त हो सकता

है। किसी और ने भी सच ही कहा है "सर्वशून्या दरिद्रता"।

दरिद्रं पुरुषं दृष्ट्वा नार्यः कामातुरा अपि।
स्प्रष्टुं नेच्छन्ति कुणपं यद्वच्च कृमिदूषितम् ॥४१६॥

आप हम हैं और हम आप हैं, इस प्रकारकी एकताबुद्धि हम दोनों की थी। अब क्या होगया? जिससे आप आपही रहे और हम हम ही रहे, ऐसा भेद भाव पैदा हो गया। तात्पर्य यह कि मनुष्य एकमत रखता हुआ भी स्वार्थवशात् चण भरमें ही विपरीत होजाता है।

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः।
किं जातमधुना येन यूयं यूयं वयं वयम् ॥४१७॥

वही दीक्षित है जो सबके प्रति सुदृष्टि रखता है, वही पण्डित है जो जितेन्द्रिय है। वही तपस्वी है जो दूसरोंके दुख को दूर करनेमें तत्पर रहता है और वही धार्मिक है जो दूसरोंके दिल को नहीं दुखाता है।

स दीक्षितो यः सकलं सदीक्षते
स पण्डितो यः करणैरखण्डितः।
स तापसो यः परतापकर्षणः
स धार्मिको यः परमर्म न स्पृशेत् ॥४१८॥

बुद्धि ही सबसे बढ़कर वस्तु है (न कि शरीर) जिसके बिना ही (बड़े शरीर वाले) हाथियों की यह दशा है कि उसे मनुष्यके अधिकारमें रहना पड़ता है। इस बात को मानों हाथीवान् (महावत) नकारा पीट कर घोषित करता है।

मतिरेव बलाद्गरीयसी यदभावे करिणामियं दशा।
इति घोषयतीव डिण्डिमः करिणो हस्तिपकाहतः क्वणन् ॥४१९

कुलमें कलङ्क, खानेके कौरमें दूषित अन्न, कुबुद्धि पुत्र, घरमें दरिद्रता, शरीरमें रोग और झगड़ालू स्त्री, ये गृहस्थोंके लिये ६ दुर्गतियाँ हैं।

कुले कलङ्कः कवले कदन्नता
सुतः कुबुद्धिर्भवने दरिद्रता।
रुजः शरीरे कलहप्रिया प्रिया
गृहागता दुर्गतयः षडेव हि ॥४२०॥

यश पैदा करने वाले काममें, मित्र-संग्रह करनेमें, प्रिय स्त्रीके सम्बन्धमें, निर्धन बन्धुके लिये, यज्ञमें, विवाहमें, दुखके समय और शत्रुके विनाशके लिये बुद्धिमान् लोग धनका व्यय करना कुछ नहीं गिनते। अर्थात् इन कामोंके लिये पर्याप्त धन खर्च करना चाहिये।

यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे
प्रियासु नारीष्वधनेषु बन्धुषु।
क्रतौ विवाहे व्यसने रिपुक्षये
धनव्ययस्त्वेषु न गण्यते बुधैः ॥४२१॥

धीर पुरुष को कष्ट देकरके भी उसके धैर्य गुण को हटा नहीं सकते। अग्निकी ज्वालाका मुख नीचे करनेपर भी कभी उसकी लौ नीचे नहीं जाती।

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-
र्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम्।
अधः कृतस्यापि यथा कृशानो-
र्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥४२२॥

पहले तो प्रेम ही नहीं करना चाहिए, यदि प्रेम हो ही गया तो उसका प्रतिदिन पालन करना चाहिये। उन्नत होकर गिरना लज्जाकी बात है। वस्तुतः पृथ्वीपर बैठने वालेको गिरनेका भय ही नहीं रहता। तात्पर्य यह कि प्रेम करके छोड़ देनेसे न प्रेम करना ही अच्छा है।

आदौ न वा प्रणयिनां प्रणयो विधेयो
दत्तोऽथवा प्रतिदिनं परिपोषणीयः।
उत्क्षेप्य यत् क्षिपति तत्प्रकरोति लज्जां
भूमौ स्थितस्य पतने भयमेव नास्ति ॥४२३॥

उपायोंके प्रयोगसे प्राप्त होने वाली सिद्धि और उपायोंके प्रयोग से प्राप्त होने वाली असिद्धिको बुद्धिमान् नीतिज्ञ लोग मानो आगे फरकती हुई दिखलाते हैं।

उपायसन्दर्शनजां च सिद्धिमपायसन्दर्शनजामसिद्धिम्।
मेधाविनो नीतिविदःप्रयुक्ताःपुरःस्फुरन्तीमिव दर्शयन्ति॥४२४॥

गङ्गाजीकी लहरोंकी ठंडी बूंदोंसे शीतल, विद्याधरों (देव जाति विशेष अथवा विद्वान ऋषि) से सेवित सुन्दर शिलातल ऐसे हिमालयके स्थान क्या नष्ट हो गये? जो मनुष्य स्वाभिमानी होते हुये भी दूसरेके आश्रित होकर जीवन बिता रहे हैं।

गङ्गातरङ्गहिमशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि
सत्स्वाभिमानपरपिण्डरता मनुष्याः ॥४२५॥

नवीन उदाहरणस्वरूप बनाकर काव्य रचना मैंनेकी है, इसमें दूसरे कविका वचन कुछ भी नहीं है। कस्तूरी पैदा करनेकी शक्ति वाला मृग क्या फूलोंके गन्धको मनसे भी कभी सूंघता है।

निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित्।
किं सेव्यते सुमनसां मनसाऽपि गन्धः
कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण ॥४२६॥

भवभूति (उत्तर राम चरित्रके लेखक) महाकवि अपने समय में अपनी कृतियोंकी अवहेलना देखकर दुखित हृदयसे लिखते हैं कि—जो मेरी कृतियोंकी अवहेलना करते हैं, उनके प्रति मेरा निवेदन है कि मेरी काव्यरचनाका प्रयत्न उनकी प्रसन्नताके लिये नहीं है। मेरा विश्वास समयकी अनन्तता और पृथ्वीकी विपुलता देखकर यह है कि भविष्यमें मेरे समान कवि कोई पैदा होगा, वही मेरी कृतियोंको समझेगा। तात्पर्य यह कि–विरोधियोंके रहते हुए भी इस अगम संसारमें उत्तम कृतिको सम्मान करने वाले कभी न कभी अवश्य पैदा होते हैं। अतः किसीको घबड़ाकर अपने गुणों को विकसित करनेसे मुख न मोड़ना चाहिये।

ये नाम केचन इह प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽत्र मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥४२७॥

हे ब्रह्माजी! आप अपनी इच्छाके अनुसार अन्य चाहे सैकड़ों दुखोंको दें मैं सब सह सकता हूँ, परन्तु अरसिक जनोंके प्रति

रसमयी कविताका निवेदन करना मेरे भाग्यमें कभी न लिखिये, न लिखिये। क्योंकि यह असह्य वेदना मैं नहीं सह सकता।

इतरतापशतानि यथेच्छया
वितर तानि सहे चतुरानन !
अरसिकेषु रसस्य निवेदनम्
शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ॥४२८॥

एक ही देवताकी उपासना करनी चाहिये वह विष्णु भगवान् हों अथवा शिव। एक ही मित्र होना चाहिये वह राजा हो अथवा सन्यासी। एक ही जगह निवास करना चाहिये वह नगर हो अथवा बन। एक ही सहवासिनी (स्त्री) होनी चाहिये वह सुन्दरी हो अथवा दरी (गुफा)।

नोट—आदिकी ४ बातें क्रमशः गृहस्थाश्रमके लिये और अन्त की ४ बातें क्रमशः सन्यासाश्रमके लिये हैं।

एको देवः केशवो वा शिवो वा
एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा।
एको वासः पत्तने वा वने वा
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥४२९॥

स्वर्गसे च्युत होकर शिवजीके शिरपर, शिवजीके शिरसे हिमालय पर्वतपर, हिमालयसे पृथ्वीपर और फिर पृथ्वीतलसे समुद्रपर गिरती हुई वही गङ्गा लघु पदको प्राप्त हुई। वस्तुतः विवेक-भ्रष्ट पुरुषोंका पतन सैकड़ों प्रकारसे होता है।

शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपतिशिरस्तः क्षितिधरं
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।

अधो गङ्गा सेयं पदमुपनतास्तोकमथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥४३०॥

न निष्कलङ्क विद्या प्राप्तकी, न धन उपार्जित किया, न मन लगा कर माता पिताकी सेवा ही की और न चञ्चल विशाल नेत्र वाली युवतियोंका आलिङ्गन स्वप्नमें भी किया, तो केवल दूसरोंके कौरों के लोलप होते हुऐ कौवोंके समान ही समय बिताया।

विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितम्
शुश्रूषाऽपि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता।
आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिङ्गिताः
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः ॥४३१॥

जब मैं थोड़ा ही ज्ञान वाला था तब हाथीके समान मदान्ध हो गया था और अपनेको सर्वज्ञ समझनेका अभिमान मनमें रखता था। परन्तु जब विद्वज्जनोंके सत्सङ्गसे कुछ कुछ ज्ञान प्राप्त करने लगा तब अपनेको मूर्ख समझा और तब ज्वरके समान मेरा अभिमान निकल गया।

यदाकिञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः।
यदा किञ्चित् किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यवगतः॥४३२॥

न नाचने वाले हैं, न तमाशा (चेटक) दिखाने वाले हैं, न गाने वाले हैं, न दूसरोंके साथ वैर करने में बुद्धि लगाने वाले हैं और न स्तनके भारसे झुकी हुई सुन्दर स्त्री ही है। फिर राजाके घरमें

हमारी पहुँच कैसे हो ? अर्थात् राजा लोग नटादिक (भाँड भडुवों) की ही कदर करते हैं।

न नटा न विटा न गायका न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः।
नृपसद्मनि नाम के वयं कुचभारानमिता न योषितः ॥४३३॥

तुम राजा हो तो हम भी गुरुकी उपासना किये हुये बुद्धिके अभिमानसे उन्नत हैं। तुम ऐश्वर्यसे प्रसिद्ध हो तो हमारे भी यश को चारों दिशाओंमें कवि लोग गाते हैं। इस प्रकार हम दोनोंके मान और धनमें अत्यन्त अन्तर न होने पर भी यदि हमारी ओर पराङ्मुख (मुख फेरने वाले बात न मानने वाले) हों तो हम भी तुम्हारे प्रति बिल्कुल निस्पृह हैं। अर्थात् राजा यदि विद्वान्का सम्मान नहीं करता तो विद्वान्को भी अपने मानको रखते हुये उसकी परवाह न रखना चाहिये।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसिकवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः।
नेत्थ मानधनातिदूरमनयोरप्यावयोरन्तरम्
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृहाः ॥४३३॥

भव्य आमके रसको पीकर कोयल घमण्ड नहीं करती, पर कीचड़युक्त पानीको पीकर ही मेढक टर्र-टर्र करने लगता है।

दिव्यं चूतरसं पीत्वा न गर्वं याति कोकिलः।
पीत्वा कर्दमपानीयं भेको मकमकायते ॥४३५॥

अगाध जलके भीतर रहने वाली रोहू मछली घमण्ड नहीं करती, पर अंगुष्ठमात्र जलमें रहने वाली सेहरी बहुत फड़फड़ाया करती है।

अगाधजलसञ्चारी न गर्वं याति रोहितः ।
अंगुष्ठोदकमात्रेण शफरी फर्फरायते ॥४३६॥

(जङ्गलमें रहकर) भोजनके लिये फल, पीनेके लिये स्वादु जल, शयनके लिये पृथ्वीतल और पहिननेके लिये वल्कल पर्याप्त समझता हूँ, परन्तु नये धन रूपी मद्यके पान करनेसे भ्रान्त हो रही हैं सब इन्द्रियां जिनकी ऐसे दुर्जनों के (वशमें रहकर समग्र सुख प्राप्त करते हुये भी उनके) अविनय (ऐंठ) को सहन नहीं कर सकता।

फलमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं
शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च ।
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥४३७॥

स्त्रियोंके साथ बातचीत न करे, पहिले की देखी हुईको स्मरण न करे, उनके सम्बन्धमें कोई चर्चा भी न करे और स्त्रियोंके चित्र को भी न देखे। इस प्रकार संयम करने हीसे पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्य का पालन हो सकता है।

सम्भाषयेत्स्त्रियं नैव पूर्वदृष्टां च न स्मरेत् ।
कथां च वर्जयेत्तासां नो पश्येल्लिखितामपि ॥४३८॥

वायु, जल और पत्तोंके ऊपर जीवन व्यतीत करने वाले विश्वामित्र पराशर प्रभृति तपस्वी भी स्त्रीके सुन्दर कमल-मुखको देखकर मुग्ध हो गये। फिर घी दूध दही और चावल खाने वाले मनुष्य यदि जितेन्द्रिय हो जायें तो विन्ध्याचल समुद्रपर तैरकर पार क्यों न होजाय।

विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवाः
तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद् विन्ध्यस्तरेत् सागरम् ॥

मुखपर झुर्रियाँ छागई हैं, शिरके बाल सब सफेद हो गये हैं और अङ्ग भी सब शिथिल हो गये हैं। अर्थात् सब प्रकारसे वृद्धता आ गई है। पर अकेली तृष्णा जवान ही होती जा रही है।

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥४४०॥

भोग (आरामके पदार्थ) नहीं भोगे गये वल्कि हम लोग ही भोगे गये, तप नहीं किया गया वल्कि हम ही तप्त हुये, काल नहीं बीता वल्कि हम ही बीते, तृष्णा नहीं जीर्ण हुई वल्कि हम लोग ही जीर्ण हो गये।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥४४१॥

घी, नमक, तैल, चावल, शाक और इन्धनकी प्रति दिन चिन्ता से प्रबल बुद्धिमान् पुरुषकी भी बुद्धि दरिद्रताके कारण नष्ट हो जाती है।

घृतलवणतैलतण्डुलशाकेन्धनचिन्तयाऽनुदिनम्।
विपुलमतेरपि पुंसो नश्यति धीर्मन्दविभवत्वात् ॥४४२॥

दिन, रात, सायं, प्रातः शिशिर और वसन्त बार बार आते रहते हैं। इस प्रकार काल सतत क्रीड़ा ही किया करता रहता है, आयु व्यतीत होती रहती है, तो भी आशा रूपी वायु पिण्ड नहीं छोड़ती।

दिनमपि रजनी सायम्प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुः तदपि न मुञ्चत्याशावायुः॥

माया सगी न मन सगो, सगो न यह संसार।
परशुराम या जीवको, सगो सो सिरजनहर॥

सूर्यके आने जाने (दिन रात) के क्रमसे जीवन घटता ही जाता है, बहुत काम वाले बड़े बड़े व्यापारोंमें फँसे रहनेसे समय के बीतनेका भी पता नहीं चलता, जीवन, मरण, बुढ़ापा और दुःखों को देखकर भी डर (चिन्ता) नहीं उत्पन्न होती, वस्तुतः मोह उत्पन्न करने वाली प्रमादरूपी मदिराको पीकर संसार उन्मत्त बना रहता है।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम्।
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते॥
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥४४॥

जो कुछ सोचा जाता है वह बहुत दूर चला जाता है, जिसको मनमें सोचा तक नहीं वह सामने आ पड़ता है। भगवान् रामचन्द्र जी कहते हैं कि जो मैं कल प्रातः चक्रवर्ती राजा होने वाला था सो आज जटा धारणकर तपस्वीके वेषमें सब त्यागकर बन जा रहा हूँ।

यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति
यच्चेतसा न गणितं तदिहाभ्युपैति ।
प्रातर्भवामि वसुधाधिपचक्रवर्ती
सोऽहं व्रजामि विपिनं जटिलस्तपस्वी ॥४४५॥

पहिले दोनों पैरोंपर गिरता है, फिर पीछेसे मांसको खाता है, कानके पास लगकर धीरे धीरे विचित्र ढंगसे कुछ मनमनाता है, किसी छिद्रको पाकर निःशङ्क होकर उसपर घुस (टूट) पड़ता है । इस प्रकार दुष्टके समस्त आचरणको मच्छर करता है ।

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम् ।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति ॥४४६॥

विचारवान् पुरुषको आरम्भमें ही उचित अथवा अनुचित काम करते हुये वहुत खयाल करके परिणामको सोचना चाहिये । सहसा किये हुये कामोंका परिणाम शल्य (कंटक) के समान हृदयको जलाने वाला दुःखद होता है ।

उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥४४७॥

विना विचारे हुये सहसा किसी कामको न करना चाहिये । क्योंकि अविवेक परम आपत्तियोंका कारण है । सोच विचारकर

काम करने वालेके पास गुणपर ललचाई हुई सम्पत्तियाँ स्वयं पहुँच जाती हैं।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदांपदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥४४८॥

जब तक दूसरे स्थानकी भलीभाँति जाँच न करले तब तक पहिले स्थानको कदापि न छोड़े, बुद्धिमान् पुरुष जब एक पैरको जमाता है तभी दूसरे पैरको आगे चलनेके लिये उठाता है।

नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ।
चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् ॥४४९॥

समुद्रको पार करनेके समान जब तक एक दुःखके अन्त तक नहीं पहुँचता हूँ तब तक दूसरा दुख उपस्थित हो जाता है। वस्तुतः छिद्र हो जानेपर बार बार अनर्थ हुआ ही करते हैं।

एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य ।
तावद् द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति॥४५०॥

दुष्टोंका धर्मशास्त्र व वेदोंका पढ़ना उनकी प्रकृतिको नहीं बदल सकता। क्योंकि स्वभाव सबको अतिक्रान्त करके रहता है। जैसे गायका दूध (चाहे कटु तिक्त भी खिलाया जाय) सदा स्वभावतः मधुर ही रहता है।

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः ।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ॥४५१॥

मृग मृगोंके साथ, गायें गौवोंके साथ, घोड़े घोड़ोंके साथ, मूर्ख मूर्खोंके साथ और विद्वान् विद्वानोंके साथ अनुकूल होकर चलते हैं। क्योंकि समान शील और व्यसन होनेही पर मित्रता होती है।

मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति
गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरङ्गैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः
समानशीलव्यसनेषु सख्यम् ॥४५२॥

रथ एक ही पहिया वाला है जिसके चलाने वाले सर्पोंसे बंधे हुये ७ घोड़े हैं, मार्ग निराधार है और रथ हाँकने वाला सारथि भी बिना पैरका है, तब भी सूर्य भगवान् अपार आकाशको नित्य ही पार किया करते हैं। वस्तुतः कार्यकी सिद्धि बड़े लोगोंके मानसिक बलपर निर्भर है न कि उपकरणोंपर।

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगाः
निरालम्बो मार्गश्चरणरहितः सारथिरपि।
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे ॥४५३॥

संसारमें मतवाले हाथियोंके मस्तक (मद) को दलन करनेमें बहादुर बहुतसे लोग हैं और प्रचण्ड सिंहोंका वध करनेमें दक्ष लोग भी बहुत हैं, पर मैं बलियोंके समक्ष बलात् कहता हूँ कि कामदेवके गर्वको चूर्ण करनेमें समर्थ विरले ही मनुष्य हैं।

मत्तेभकुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः।

किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः ॥४५४॥

स्त्रियोंको भोजन वस्त्र भी देवे, ऋतुकालमें सहवास भी करे और भूषण इत्यादि भी देकर सन्तुष्ट रक्खे, पर उनके साथ बुद्धिमान् कभी सलाह न करे।

भोजनाच्छादने दद्यादृतुकाले च सङ्गमम्।
भूषणाद्यं च नारीणां न ताभिर्मन्त्रयेत् सुधीः ॥४५५॥

घाव लग जानेपर उसपर बार बार चोट लगती रहती है, धन घट जानेपर भूख बढ़ जाती है, आपत्ति पड़ जानेपर सभी वैर प्रकट होने लगते हैं। वस्तुतः छिद्र हो जानेपर बहुत अनर्थ होते रहते हैं।

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णं धनक्षये दीप्यति जाठराग्निः।
आपत्सु वैराणि समुल्लसन्ति छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति॥४५६॥

जिसके घरमें माता नहीं है और प्रिय बोलने वाली भार्या भी नहीं है, उस पुरुषको घर छोड़कर जंगल चला जाना चाहिये क्योंकि उसके लिये जैसा जंगल वैसा घर, दोनों बराबर ही हैं।

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या च प्रियवादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥४५७॥

जैसे मलिन वस्त्र पहिना हुआ पुरुष जहाँ तहाँ सब जगह बैठ जाताहै कुछ विचार नहीं करता, उसी प्रकार जिसका धन नष्ट हो चुका है वह बचे हुये धनकी भी रक्षा नहीं कर सकता।

यथा हि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्र तत्रोपविश्यते।
एवं चलितवित्तस्तु वित्तशेषं न रक्षति ॥४५८॥

सब नष्ट हो जानेका अवसर आ पड़नेपर यदि आधा त्याग देनेसे कार्य न बिगड़े तो बुद्धिमान्को चाहिये कि आधा त्याग दे और शेष आधेसे अपना कार्य करे। क्योंकि सर्वनाश होजानेपर किसी कार्यका करना दुष्कर है।

सर्वनाशे समुत्पन्ने ह्यर्द्धं त्यजति पण्डितः।
अर्द्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुस्तरः ॥४५६॥

शस्त्र द्वारा मारे गये शत्रु वस्तुतः नहीं मरते वरन् बुद्धिद्वारा मारे हुये शत्रु पूर्णतया मर जाते हैं। क्योंकि शस्त्र केवल पुरुष के शरीर मात्रको मारता है, परन्तु बुद्धि तो शत्रुके कुल, ऐश्वर्य और यशको भी मार देती है।

शस्त्रैर्हता न हि हता रिपवो भवन्ति
प्रज्ञाहताश्च रिपवः सुहता भवन्ति।
शास्त्रं निहन्ति पुरुषस्य शरीरमेकं
प्रज्ञा कुलं च विभवं च यशश्च हन्ति ॥४६०॥

अधम श्रेणीके लोग किसी कार्यको विघ्नके भयसे प्रारम्भ ही नहीं करते और मध्य श्रेणीके प्रारम्भ करके विघ्न आ पड़नेपर उसे त्याग देते हैं। परन्तु उत्तम श्रेणीके लोग तो बार बार विघ्न आने पर भी प्रारम्भ करके किसी कार्यको नहीं छोड़ते।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥४६१॥

लोभी पुरुषका यश, चुगुलखोर की मित्रता, नष्टेन्द्रियका वंश, धन एकत्र करनेवालेका धर्म, नशेबाजकी विद्याका फल, कंजूसका सुख, और प्रमादी मन्त्रीवाले राजाका राज्य नष्ट हो जाता है।

लुब्धस्य नश्यति यशः पिशुनस्य मैत्री
नष्टेन्द्रियस्य कुलमर्थपरस्य धर्मः।
विद्याफलं व्यसनिनः कृपणस्य सौख्यं
राज्यं प्रमत्तसचिवस्य नराधिपस्य ॥४६२॥

किस अपथ्य सेवीको रोग नहीं पकड़ते? किस दुष्ट मन्त्री के पास नीतिके दोष नहीं पहुँचते? लक्ष्मी किसको नहीं अभिमानी बना देती? मृत्यु किसको नहीं मारती? और कामदेव किसे नहीं सताता?

सन्तापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः
दुर्मन्त्रिणं कमुपयन्ति न नीतिदोषाः।
कं श्रीर्न दर्पयति कं न निहन्ति मृत्युः
कं स्त्रीकृता न विषयाः परितापयन्ति ॥४६३॥

कुल, शील, सनाथता, विद्या, धन, शरीर (स्वास्थ्य) और अवस्था इन सात गुणोंका विचार करके ही बुद्धिमान् लोगोंको कन्यादान करना चाहिये। शेष बातें कुछ भी न सोचना चाहिये।

कुलं च शीलं च सनाथता च
विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च।
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया
कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥४६४॥

भोज्य पदार्थ और भोजन करके पचाने की शक्ति, सुन्दर रमणी और रमण करने की शक्ति, धन और दान करनेकी शक्तिका होना थोड़ी तपस्याका फल नहीं है। अनन्त पुण्य होने ही से इनकी प्राप्ति होती है।

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥४६५॥

स्त्रियोंके प्रति शिरके बालोंका सफेद होना पुरुषोंके निरादरका प्रधान कारण है। रक्खे हुये हैं हड्डियोंके टुकड़े जिनपर ऐसे चाण्डाल के कुयेंके समान उन्हें दूर ही से त्यागकर चली जाती हैं।

श्वेतं पदं शिरसि यत्तु शिरोरुहाणां
स्थानं परं परिभवस्य तदेव पुंसाम् ।
आरोपितास्थिशकलं परिहृत्य यान्ति
चाण्डालकूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥४६६॥

मौन रहना अच्छा पर झूठ बोलना नहीं अच्छा, सरिया (गोष्ठ) का खाली रहना अच्छा परन्तु दुष्ट बैलका रहना नहीं अच्छा, वेश्या को पत्नी बनाना अच्छा पर कर्कशा कुलाङ्गना नहीं अच्छी, जंगलमें रहना अच्छा पर अविवेकी राजाके नगरमें रहना अच्छा नहीं।

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं
वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभः ।
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे ॥४६७॥

"रोगी, घृणा करने वाला, असन्तुष्ट, क्रोधी, नित्य शङ्कित

रहने वाला और दूसरेके भाग्यपर जीने वाला" ये ६ दुःख भोगने वाले होते हैं।

रोगी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः ॥४६८॥

असज्जन पुरुष भी सज्जनोंके संग करने वालोंके साथसे दुःसाध्य कार्यको भी साध्य कर दिखाता है। फूलके सहारे शिवजीके मस्तक पर चढ़ी हुई चिउँटी चन्द्र-मण्डल को चूमती है।

असज्जनः सज्जनसङ्गिसङ्गात्
करोति दुःसाध्यमपीह साध्यम्।
पुष्पाश्रयाच्छम्भुशिरोऽधिरूढा
पिपीलिका चुम्बति चन्द्रबिम्बम् ॥४६९॥

जो जिसके गुणकी विशेषताको नहीं जानता वह उसकी सदा निन्दा करता ही है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जैसे कोल भिल्लनी गजमुक्ताको छोड़कर गुंजा ही धारण करती है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं
स तं सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भजातां
मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाम् ॥४७०॥

कविराजोंकी कविताके आनन्दसे विद्वान् लोग ही प्रसन्न होते न कि मूर्ख। पत्थरोंके बीच चन्द्रकान्त ही चन्द्रमाकी किरणोंसे सरस (गीला) होता है।

कवीश्वराणां वचसां विनोदैर्नन्दन्ति विद्यानिधयो न चान्ये
चन्द्रोपला एव करैर्हिमांशोर्मध्ये शिलानां सरसीभवन्ति ॥

स्वयं महेश हैं और श्वशुर हिमाचल नगेश (पर्वतोंके राजा) हैं, मन्त्री कुबेर धनेश (धनके मालिक) हैं, पुत्र गणेश (देवगणों के अधिपति) हैं तो भी शंकरजी को भिक्षा ही माँगना पड़ता है। ईश्वरकी इच्छा बलवती है।

स्वयं महेशः श्वशुरो नगेशः सखा धनेशस्तनयो गणेशः।
तथापि भिक्षाटनमेव शम्भोर्बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा ॥

हे लक्ष्मि ! मेरे इस कटुवचनको क्षमा कीजिये कि पुरुष लोग तुम्हारी उपासना करनेसे अन्धे हो जाते हैं, नहीं तो कमल पत्रके समान विशाल हैं नेत्र जिनके ऐसे विष्णु भगवान् क्या सर्प (शेष) की बनी हुई शय्यापर सोते ?

लक्ष्मी ! क्षमस्व वचनीयमिदं दुरुक्तम्
अन्धीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन ।
नो चेत्कथं कमलपत्रविशालनेत्रो
नारायणः स्वपिति पन्नगभोगतल्पे ॥४७३॥

पुरुषको गुणोंकी प्राप्तिके लिये सदा यत्न करते रहना चाहिये। गुणोंके बीच कोई भी ऐसा गुण नहीं जो प्राप्त न हो सके। गुणकी प्रकर्षता ही के कारण चन्द्रमा अलङ्घनीय शिवजीके शिर को लाँघ गया।

गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम्।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शम्भोरलंघ्यमुल्लङ्घितमुत्तमाङ्गम् ॥४७४॥

ऐ मेघ ! तुम्हारा छोड़ा हुआ जल कहींपर जलके ही रूपमें रहता है, कहीं सूखकर कुछ भी नहीं रह जाता और कहीं विष भी

बन जाता है। पर जिसमें पड़नेसे मोती बन जाता है, उसके सम्बन्ध में तुम विमुख क्यों रहते हो ?

आपो विमुक्ताः क्वचिदाप एव
क्वचिन्न किञ्चिद्गरलं क्वचिच्च ।
यस्मिन् विमुक्ताः प्रभवन्ति मुक्ताः
पयोद ! तस्मिन् विमुखः कुतस्त्वम् ॥४७५॥

सरस, कुलीन और दुख हर लनेवाली श्रेष्ठ पत्नी, मार्गमें स्थित पेड़की छायाके समान बहुत पुण्यसे किसीको मिलती है ।

स्निग्धा कुलीना महती गृहिणी तापहारिणी ।
तरुच्छायेव मार्गस्था पुण्यैः कस्यापि लभ्यते ॥४७६॥

मालती फूलके गुच्छेके समान दो हालत मनस्वियोंकी होती है (१) सबके मस्तकके ऊपर चढ़े (२) अथवा वनमें ही गिरजाय ।

मालतीस्तबकस्येव द्वे गती तु मनस्विनाम् ।
सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेद्विशीर्येच्च वनेऽथवा ॥४७७॥

हे शंकर ! अकेले, निस्पृह, शान्त, हाथ ही है पात्र जिसका, दिशा ही है वस्त्र जिसका, और कर्म-फलको विनाश करनेमें समर्थ कब मैं हूँगा ?

एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शम्भो ! भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥४७८॥

चाहे सभामें न जाय, यदि जाय तो उचित ही बोले । कुछ न बोलने से या विवाद करनेसे मनुष्यको पाप लगता है ।

सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समञ्जसम् ।
अब्रुवन् विब्रुवन् वाऽपि नरो भवति किल्विषी॥४७६॥

ये स्त्रियाँ कार्यके लिये हँसती हैं, रोती हैं, विश्वास दिलाती हैं पर दूसरेपर विश्वास नहीं करती हैं। इसलिये कुलीन और शीलवान् मनुष्य को चाहिये कि इन्हें श्मशानकी घटी (हंडी) के समान सदा दूर ही रक्खे।

एता हसन्ति च रुदन्ति च कार्यहेतोः
विश्वासयन्ति च परं न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलवता सदैव
नार्यः श्मशान घटिका इव वर्जनीयाः ॥४८०॥

मोहित करती हैं, पागल बना देती हैं, विडम्बना करती हैं, भर्त्सना देती हैं, रमण करती हैं और विषाद पैदा कर देती हैं। ये सुन्दर नेत्र वाली स्त्रियाँ पुरुषके सरल हृदयपर अधिकार जमाकर क्या नहीं कर डालती हैं ?

सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सरलं हृदयं नराणां
किं वा नु वामनयना न समाचरन्ति ॥४८१॥

प्रमदाओंके साथ अधिक सहवास नहीं करना चाहिए। स्त्रियों के बलको अधिक नहीं बढ़ाना चाहिए। क्योंकि वे अधिक आसक्त हुये पुरुषोंके साथ कटेहुये पङ्खवाले कौवोंके समान क्रीड़ा करती हैं।

नातिप्रसङ्गः प्रमदासु कार्यो नेच्छेद्बलं स्त्रीषु विवर्द्धमानम् ।
अतिप्रसक्तैः पुरुषैर्यतस्ताः क्रीडन्ति काकैरिव लूनपक्षैः॥४८२

विवेकरहित पशु भी अन्यसे पाये हुये दानको पुत्रसे भी अधिक प्रिय समझता है, ऐसा मैं मानता हूँ. खल (तिल की) खिलाने वाले को बच्चे वाली भैंस भी सम्पूर्ण दूध को दे देती है। (फिर घूस खाने वाले मनुष्यके लिये क्या कहना ?)

पुत्रादपि प्रियतरं खलु तेन दानं
मन्ये पशोरपि विवेकविवर्जितस्य ।
दत्ते खले तु निखिलं खलु येन दुग्धं
नित्यं ददाति महिषी ससुतापि पश्य ॥४८३॥

देना, लेना, गुप्त बात कहना, पूछना, खाना और खिलाना ये ६ प्रीतिके लक्षण हैं।

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥४८४॥

जब तक लोग दान देते हैं तभी तक उनसे प्रीति रहती है। बछड़ा दूधका अभाव देख कर माताको छोड़ देता है।

तावत्प्रीतिर्भवेल्लोके यावद्दानं प्रदीयते ।
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम् ॥४८५॥

जिनके घरमें गृहिणी अन्नपूर्णा है जो कि अन्न दानसे तीनों लोकोंकी रक्षा करती है, वे शंकरजी भी हाथमें कपाल लेकर भिक्षा माँगते फिरते हैं। वस्तुतः भाग्यमें लिखा हुआ नहीं मिटता।

सीमन्तिनी यस्य गृहेऽन्नपूर्णा त्रिलोकरक्षां कुरुतेऽन्नदानैः ।
भिक्षाचरः सोऽपि कपालपाणिर्ललाटलेखो न पुनः प्रयाति ४८६

स्थाणु (शिवजी) स्वयं मूलविहीन (माता पिता रहित) हैं,

उनके पुत्र विशाख (स्वामिकार्तिक) और उनकी पत्नी (पार्वतीजी) अपर्णा हैं। वे शिव दूसरोंके चढ़ाये हुये फूलोंसे अभीष्ट फल देते हैं। कैसी विचित्र बात है ?

स्थाणुः स्वयं मूलविहीन एव पुत्रो विशाखो रमणीत्वपर्णा।
परोपनीतैः कुसुमैरजस्रं फलत्यभीष्टं किमिदं विचित्रं॥४८७॥

करील वृक्षमें यदि पत्ते नहीं हैं तो वसन्तका क्या दोष ? उल्लू पक्षी यदि दिनमें नहीं देख पाता तो सूर्य्यका क्या दोष ? वर्षा जल यदि पपीहाके मुखमें नहीं पड़ता तो मेघका क्या दोष ? विधाताने जो पहिले ही भाग्यमें लिख दिया है उसे कौन हटा सकता है ?

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः॥४८८॥

देना, भोगना और नष्ट हो जाना ये तीन दशायें धनकी होती हैं। जो न देता है और न भोगता है, उसकी तीसरी दशा (विनाश) होती है।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥४८९॥

दुर्बल पुरुष यदि ऐश्वर्य चाहता हो तो बलवान्‌के साथ मनसे भी विरोध न करे। क्योंकि अत्यन्त बल वालेका तो कुछ बिगड़ता नहीं, परन्तु पतङ्गवृत्ति वालेका विनाश निःसन्देह ही हो जाता है। चींटी दीमक प्रभृति कीट जब मरने वाले होते हैं तब उनके पंख जम आते हैं और वे उड़ने लगते हैं, अन्तमें वे अग्नि (दीपक) पर

धावा करते हैं और स्पष्ट जल जाते हैं। इसी प्रकार दुर्बल अपने विनाशके लिये ही उछल कूदकर बलवान्के साथ विरोध करने लगता है और अन्तमें विनष्ट हो जाता है।

बलीयसा हीनबलो विरोधं
न भूतिकामो मनसाऽपि वाञ्छेत्।
न वध्यतेऽत्यन्तबलो हि यस्माद्
व्यक्तं प्रणाशोऽस्ति पतङ्गवृत्तेः ॥४६०॥

सच्चे मित्रोंके साथ बार बार विचार कर और स्वयम् भी अपनी बुद्धिसे सोचकर जो कार्य करता है, वही बुद्धिमान् है और वही धन और यशका पात्र होता है।

सुहृद्भिराप्तैरसकृद्विचारितं
स्वयञ्च बुद्ध्या प्रविचारिताश्रयम्।
करोति कार्यं खलु यः स बुद्धिमान्
स एव लक्ष्म्या यशसां च भाजनम् ॥३६१॥

बिना देशकालका विचार करके, भविष्यके लिये अक्षम, अप्रिय और अपना लाघव करने वाला कारण रहित जो वचन बोला जाता है, वह वचन नहीं है बल्कि विष है।

अदेशकालज्ञमनायतिक्षमं
यदप्रियं लाघवकारि चात्मनः।
योऽत्राब्रवीत्कारणवर्जितं वचो
न तद्वचःस्याद्विषमेव तद्वचः ॥४६२॥

बलसे युक्त बुद्धिमान् पुरुष भी स्वयं दूसरे को अपना बैरी न

बनावे। मेरे वैद्य वर्तमान हैं ऐसा सोच कर कौन चतुर अकारण विष खा सकता है ?

बलोपपन्नोऽपि हि बुद्धिमान्नरः
परं नयेन्न स्वयमेव वैरिताम्।
भिषङ्ममास्तीति विचिन्त्य भक्षये-
दकारणात् को हि विचक्षणो विषम् ॥४६३॥

आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये, धन खर्च करके दारा (स्त्री प्रभृति परिवार) की रक्षा करनी चाहिये और दारा और धन दोनोंका ख्याल छोड़ करके भी अपनी रक्षा निरन्तर करनी चाहिये।

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥४६४॥

छूते ही हाथी मार देता है, सूँघते ही सर्प काट लेता है, हँसता हुआ भी राजा नष्ट कर देता है और सम्मान करता हुआ भी दुष्ट घात कर बैठता है।

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः।
हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ॥४६५॥

कुटुम्बके हितके लिये एक को छोड़ देवे, ग्राम भरके हितके लिये कुटुम्बकी परवा न करे, देशके हितके लिये ग्रामको छोड़ देवे और अपने हितके लिये संसार भर को त्याग देवे।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥४६६॥

विषरहित सर्प को भी बड़ा फण काढ़ना ही चाहिये। विष हो या न हो घटाटोप (आडम्बर) ही भयङ्कर हो जाता है।

निर्विषेणाऽपि सर्पेण कर्तव्या महती फणा।
विषं भवतु मा वाऽस्तु घटाटोपो भयङ्करः ॥४६७॥

विद्या, वपु (शरीर), वाणी, वस्त्र और विभव इन ५ वकारोंसे युक्त पुरुष गौरव पाता है।

विद्यया वपुषा वाचा वस्त्रेण विभवेन च।
वकारैः पञ्चभिर्युक्तो नरः प्राप्नोति गौरवम् ॥४६८॥

स्त्री, शत्रु, कुमित्र और विशेषतः वेश्याके साथ एक दिल होकर जो पुरुष रहता है वह अधिक नहीं जी सकता।

स्त्रीणां शत्रोः कुमित्रस्य पण्यस्त्रीणां विशेषतः।
यो भवेदेकभावेन न स जीवति मानवः ॥४६९॥

प्राप्त लाभको सुरक्षित रखनेके लिये, भविष्य लाभ की प्राप्तिके लिये और आई हुई आपत्तिसे छुटकारा पानेके लिये जो सलाह ली जाती है वही उत्तम सलाह है।

अतीतलाभस्य सुरक्षणार्थं भविष्यलाभस्य च सङ्गमार्थम्।
आपत्प्रपन्नस्य च मोक्षणार्थं यन्मन्त्रितोऽसौ परमो हि मंत्रः ५००

सर्प वायु ही पीते हैं परन्तु दुर्बल नहीं रहते, जंगली हाथी शुष्क तृण खाकरके भी बली ही रहते हैं, मुनिवर लोग कन्द फलसे ही जीवन बिताते हैं, वस्तुतः सन्तोष ही पुरुषोंकी बड़ी निधि है।

सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते
शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति।

कन्दैः फलैर्मुनिवरा गमयन्ति कालं
सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥५०१॥

घरके बीच गाड़े हुये धनसे यदि कोई धनी कहलाता है, तो उसी धनसे हम क्यों न धनी कहे जायें ?

तात्पर्य यह कि पृथ्वीमें गाड़ा हुआ धन यदि खर्च न किया जाय तो वह व्यर्थ है।

गृहमध्यनिखातेन धनेन धनिनो यदि ।
भवामः किन्न तेनैव धनेनधनिनो वयम् ॥५०२॥

वेद पढ़नेका फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्र पढ़नेका फल है शील और धनसे सम्पन्न होना, स्त्रीका फल है रमण और पुत्र देना और धनका फल है दान करना और भोगना।

अग्निहोत्रफला वेदा शीलवित्तफलं श्रुतम् ।
रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम् ॥५०३॥

भली भाँति सञ्चित किया गया हुआ, प्राणके समान सुरक्षित रक्खा गया हुआ और अपने शरीरके लिये भी जिसका उपयोग कभी नहीं किया ऐसा निष्ठुर धन यमालय जाते समय पाँच पग भी साथ नहीं देता।

सुसञ्चितैर्जीवनवत्सुरक्षितै-
र्निजेऽपि देहे न नियोजितैः क्वचित् ।
पुंसो यमान्तं व्रजतोऽपि निष्ठुरै-
रेतैर्धनैः पञ्चपदी न दीयते ॥५०४॥

आकृतिसे, सङ्केतसे, चालसे, चेष्टासे, बोलनेसे और नेत्र तथा मुखके हेरने फेरने और सिकोड़नेसे मनकी बात जानी जाती है।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥५०५॥

जिसकी शक्ति, वंश और कार्यका पता न चलता हो, उसका साथ न करे, यह बृहस्पतिकी सम्मति है ।

यस्य न ज्ञायते वीर्यं न कुलं न विचेष्टितम् ।
न तेन सङ्गतिं कुर्यादित्युवाच बृहस्पतिः ॥५०६॥

सब प्रकारसे सम्पन्न रहते हुये भी बुद्धिमान् को चाहिये कि अनेक मित्र बनावे । समुद्र परिपूर्ण होता हुआ भी चन्द्रोदय को चाहता है ।

अपि सम्पूर्णतायुक्तैः कर्तव्याः सुहृदो बुधैः
नदीशः परिपूर्णोऽपि चन्द्रोदयमपेक्षते ॥५०७॥

तब तक भयसे डरना चाहिये जब तक कि वह न आया हुआ हो । आये हुये भयको देखकर निर्भयतापूर्वक यथोचित उपाय करे।

तावद्भयेन भेतव्यं यावद्भयमनागतम् ।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद्यथोचितम् ॥५०८॥

सोनेके मृगका होना असम्भव था तब भी रामचन्द्र उसके पाने के लिये ललचा पड़े । प्रायः विपत्तिकालमें बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी मलिन हो जाती है !

असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय ।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति५०९

जिसकी छायामें मृग सोये हुये हैं, पक्षियोंके आश्रय लेनेसे जिसकी पत्तियाँ दिखाई नहीं पड़ती हैं, जिसके खोढ़रोंमें कीट भरे

हुये हैं, जिसकी शाखाओंपर बानर बस रहे हैं, और जिसके फूलोंके रस को भौंरे निर्भीकताके साथ चूस रहे हैं, अर्थात् जो सब प्रकारसे बहुत प्राणियोंके संगसे सुख देने वाला है वही वृक्ष प्रशंसनीय है। इन गुणोंसे रहित वृक्ष तो पृथ्वीका भार स्वरूप ही है।

छायासुप्तमृगः शकुन्तनिवहैर्विष्वग्विलुप्तच्छदः
कीटैरावृतकोटरः कपिकुलैः स्कन्धे कृतप्रश्रयः।
विश्रब्धं मधुपैर्निपीतकुसुमः श्लाघ्यः स एव द्रुमः
सर्वाङ्गैर्बहुसत्वसङ्गसुखदो भूभारभूतोऽपरः ॥५१०॥

मूर्ख लोग पण्डितोंसे, निर्धन लोग धनियोंसे, व्यभिचारी लोग ब्रह्मचारियोंसे और वेश्यायें कुलाङ्गनाओंसे द्वेष करती हैं।

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या निर्धनानां महाधनाः।
व्रतिनः पापशीलानामसतीनां कुलस्त्रियः ॥५११॥

विना किसी कार्य कारणके जहाँ बड़ा आदर होता हो, वहाँ अवश्य सन्देह करना चाहिये, क्योंकि परिणाममें वह दुःखद होगा।

अत्यादरो भवेद्यत्र कार्यकारणवर्जितः।
तत्र शङ्का प्रकर्तव्या परिणामेऽसुखावहः ॥५१२॥

भली भाँति पढ़े हुये शास्त्र को भी बार-बार पढ़ते रहना चाहिये। सतत सेवा द्वारा अनुकूल राजाके विषयमें भी सशङ्क रहना चाहिये। गोदमें बैठी हुई युवतीकी रक्षाके सम्बन्धमें भी असावधान न रहना चाहिये। शास्त्र, राजा और युवती स्त्री कहाँ वशमें रह सकती है?

शास्त्रं सुचिन्तितमपि परिशीलनीयम्
आराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः।

अङ्के धृताऽपि युवतिः परिरक्षणीया
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम् ॥५१३॥

धर्मके लिये प्रयत्न करते हुये भी यदि दैवयोगसे आपत्तियाँ कभी आपड़ें तो उनकी शान्तिके लिये बुद्धिमानोंको विशेष करके नीतिका आश्रय लेना चाहिये। समस्त संसारमें यह लोकोक्ति सिद्ध है कि आगसे जले हुये को आगसे सेंकना भी हितकर है।

धर्मार्थं यततामपीह विपदो दैवाद्यदि स्युः क्वचि-
त्तासामुपशान्तये सुमतिभिः कार्यो विशेषान्नयः।
लोके ख्यातिमुपागताऽत्र सकले लोकोक्तिरेषा यतो
दग्धानां किल वह्निना हितकरः सेकोऽपि तस्योद्भवः ॥५१४॥

सज्जन यदि अपने स्थानपर दुर्जनका प्रवेश होने दे तो वह उस स्थान को चाहता हुआ सज्जनके नाशके लिये उद्यत हो जाता है। अतः बुद्धिमान् को चाहिये कि वह कभी भी दुर्जनोंको इसके लिये अवसर न दे। ऐसा सुननेमें आता है कि जार भी कभी गृह (गृहणी) का मालिक बन बैठता है।

दद्यात्साधुर्यदि निजपदे दुर्जनानाम्प्रवेशं
तन्नाशाय प्रभवति ततो वाञ्छमानः स्वयं सः।
तस्माद्देयो विपुलमतिभिर्नावकाशोऽधमानां
जारोऽपि स्याद् गृहपतिरिति श्रूयते वाक्यतोऽत्र ॥५१५॥

उद्योगी पुरुष रूपी सिंह को ही लक्ष्मी मिलती है। 'भाग्यमें जो होगा मिलेगा' ऐसा कायर लोग कहते हैं। अतः केवल भाग्य ही का भरोसा छोड़ कर अपनी शक्तिके अनुसार उद्योग करना चाहिये। यदि यत्न करनेपर भी कार्य न सिद्ध हो तो सोचना

चाहिये कि यत्नमें क्या त्रुटि रह गई है ? और उसे फिर फिर करना चाहिये ?

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
दैवेन देयमिति का पुरुषा वदन्ति ।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्रदोषः॥५१६॥

सदा हृदयमें रहने वाले मित्र, गुणवान् सेवक, अनुकूल पत्नी और शक्तिवान् स्वामीके प्रति दुःख निवेदन करके मनुष्य सुखी होता है ।

सुहृदि निरन्तरचित्ते गुणवति भृत्येऽनुवर्तिनि कलत्रे ।
स्वामिनि शक्तिसमेते निवेद्य दुःखं सुखी भवति ॥५१७॥

दैवके प्रतिकूल होनेपर भी धैर्य न छोड़ना चाहिये, क्योंकि धैर्यका अवलम्बन करनेसे भी कभी सिद्धि प्राप्त कर सकता है । जैसे समुद्रमें जहाज टूट जानेपर मल्लाह (या समुद्री व्यापारी) तैरना चाहता है ।

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि दैवे
धैर्यात्कदाचित् स्थितिमाप्नुयात्सः ।
यथा समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे
सांयात्रिको वाञ्छति ततु मेव ॥५१८॥

जिस कुलमें जो पुरुष प्रधान है उसकी रक्षा सब प्रकारसे कुटुम्बके अन्य लोगोंको करना चाहिये । कुलके सारांश-स्वरूप उस पुरुषके नष्ट हो जानेसे, नाभि (नाह) भंग हो जानेसे अरक (आरा) के द्वारा गाड़ीके समान वह कुल नहीं चल सकता ।

यस्मिन् कुले यः पुरुषः प्रधानः स सर्वयत्नैः परिरक्षणीयः।
तस्मिन् विनष्टे कुलसारभूते न नाभिभङ्गे ह्यरका वहन्ति ५१९

प्रेमभावसे किया हुआ उपकार भी संसारमें द्वेष्यता को प्राप्त होजाता है और दूसरोंसे किया गया प्रत्यक्ष अपकार भी प्रीतियोग्य हो जाता है। अनेक भावोंका आश्रय होनेसे राजाओंके मनके दुर्ग्राह्य (कठिनतासे अनुकूल करने योग्य) होनेके कारण सेवा वृत्ति बहुत कठिन है, उसे योगी लोग भी नहीं समझ सकते।

भावस्निग्धैरुपकृतमपि द्वेष्यतां याति लोके,
साक्षादन्यैरपकृतमपि प्रीतये चोपयाति।
दुर्ग्राह्यत्वान्नृपतिमनसां नैकभावाश्रयाणां
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ॥५२०॥

जो किसी निमित्त को पाकर क्रुद्ध होता है वह उसके दूर हो जानेपर निश्चय शान्त हो जाता है। पर जो बिना कारणके ही द्वेष करता है, उसे कोई मनुष्य कैसे सन्तुष्ट रख सकता है ?

निमित्तमुद्दिश्य हि यः प्रकुप्यति
ध्रुवं स तस्यापगमे प्रशाम्यति।
अकारणद्वेषपरो हि यो भवेत्-
कथं नरस्तं परितोषयिष्यति ॥५२१॥

इस संसारमें वे ही धन्य हैं, वे ही ज्ञानी और वे ही सभ्य हैं, जिनके घरमें कार्यके लिये मित्र लोग आते हैं।

ते धन्यास्ते विवेकज्ञास्ते सभ्या इह भूतले।
आगच्छन्ति गृहे येषां कार्यार्थं सुहृदो जनाः॥५२२॥

सभामें जिसको पहिले गुणवान् कह दिया है, फिर उसका दोष प्रतिज्ञा-भङ्ग दोषका भय रखते हुये नहीं कहना चाहिये।

उक्तो भवति यः पूर्वं गुणवानिति संसदि ।
तस्य दोषो न वक्तव्यः प्रतिज्ञाभङ्गभीरुणा ॥५२३॥

विग्रह (युद्ध) करनेमें ३ फल प्राप्त होते हैं। (१) भूमि (२) मित्र (३) धन। यदि इनमें एक भी न मिल सके तो कभी भी युद्ध न करे।

भूमिर्मित्रं हिरण्यञ्च विग्रहस्य फलत्रयम् ।
नास्त्येकमपि यद्येषां न तं कुर्यात्कथञ्चन ॥५२४॥

जैसे बीजका छोटा-सा अंकुर प्रयत्नके साथ भली भाँति रक्षा किया गया हुआ समय पाकर (वृक्ष होकर) फल देने वाला हो जाता है, उसी प्रकार सुरक्षित मनुष्य भी फलप्रद होता है।

यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिरक्षितः ।
फलप्रदो भवेत्काले तद्वल्लोकः सुरक्षितः ॥५२५॥

अनुचित मन्त्रणासे राजा, काम क्रोधादिमें आसक्त होनेसे संन्यासी, लाड़ प्यार करनेसे पुत्र, विद्या न पढ़नेसे ब्राह्मण, कुपुत्र होनेसे कुल, दुष्ट-संसर्गसे शील, नम्रता न रखनेसे मित्रता, अनीति करनेसे ऐश्वर्य, परदेशमें रहनेसे स्नेह, गर्व करनेसे स्त्री, न देख भाल करनेसे कृषि और प्रमादके साथ खर्च करनेसे धन नष्ट हो जाता है।

दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालनात्
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्स्नेहः प्रवासाश्रयात्
स्त्री गर्वादनवेक्षणादपि कृषिः त्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥५२६॥

सज्जनोंके पहिले मनमें फिर बाद को शरीरमें जरा (बुढ़ापा) व्याप्त होती है। परन्तु दुष्टोंके तो शरीरमें ही आती है, मनमें तो कभी आती ही नहीं।

आदौ चित्ते ततः काये सतां सम्पद्यते जरा।
असतां तु पुनः काये नैव चित्ते कदाचन ॥५२७॥

कौवेमें पवित्रता, जुवारीमें सत्यवादिता, सर्पमें क्षमा, स्त्रियोंमें कामदेवकी शान्ति, कायरमें धैर्य, शराबीमें तत्व (असलियत, ब्रह्म) का विचार और राजामें मित्रताका होना किसने देखा या सुना है?

काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता
भूपे सख्यं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥५२८॥

संसारमें किसने धन पाकर घमण्ड नहीं किया? किस विषयी की आपत्तियां समाप्त हुईं? स्त्रियोंके द्वारा किसका मन खण्डित न हुआ? राजाका प्रिय कौन हुआ? कौन कालका ग्रास न हुआ? कौनसा स्वार्थी गौरवको प्राप्त हुआ? और कौनसा पुरुष दुर्जनकी बातमें पड़कर कल्याण पाया?

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्यापदोऽस्तं गताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान् ॥५२९॥

चाहे मूर्ख हो, दूषित कुलमें उत्पन्न हो और असह्य क्यों न हो

पर जो सदा समीप रहता है उसी पुरुषको राजा मानता है। प्रायः करके राजा, युवतियां और लतायें अपने पासमें रहने वालेही पर लिपटती हैं।

आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं
विद्याविहीनमकुलीनमसंस्कृतं वा।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च
यः पार्श्वतो वसति तं परिवेष्टयन्ति ॥५३०॥

व्याघ्र और बड़े बड़े गजोंसे सेवित भयंकर वनमें पेड़ोंके नीचे रहना, पके फल खाना, जल पीना, तृणपर सोना और वल्कल (पेड़की छाल) पहिनकर रहना अच्छा है। पर बान्धवोंके बीच निर्धन होकर रहना अच्छा नहीं।

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं
द्रुमालयं पक्वफलाम्बु भोजनम्।
तृणानि शय्या परिधानवल्कलम्
न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥५३१॥

राजाका हित करने वाला लोगोंका वैरी हो जाता है, देशका हित करने वाला राजासे परित्यक्त हो जाता है, अतः एक ही प्रकारकी विरोधावस्थाकी उपस्थितिमें राजा और देश दोनोंका हित करने वाला पुरुष दुर्लभ ही है।

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः।
इति महति विरोधे वर्तमाने समाने
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥५३२॥

जिसे न विपत्तिमें शोक, न सम्पत्तिमें हर्ष और न युद्धमें भय है, उस तीनों लोकके तिलक स्वरूप विरले ही पुत्रको माता पैदा करती है।

यस्य न विपदि विषादः सम्पदि हर्षो रणे न भीरुत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जननी जनयति सुतं विरलम् ॥५३३॥

भूखके कारण दुर्बल हुआ भी, बुढ़ापाके कारण कृश हुआ भी, अन्तिम (मरण) अवस्थाको प्राप्त होरहा भी, शिथिल, आपत्ति-ग्रस्त और निस्तेज होकर भी, मतवाले हाथियोंके मस्तकको फाड़कर खानेमें ही जिसकी रुचि है ऐसा मानियोंमें अग्रण सिंह, वृद्ध होता हुआ प्राणोंका विनाश होते हुये भी क्या घास खा सकता है।

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलः प्राप्तोऽपि चान्त्यां दशाम्
आपन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि।
मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलग्रासैकबद्धस्पृहः
किं जीर्णस्तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥५३४॥

कपोलपर बहते हुये मदके बूंदोंपर आसक्त, मतवाले घूमते हुये भ्रमरके पैरकी ठोकर खाता हुआ महाबली हाथी भी उसपर क्रुद्ध नहीं होता है। वस्तुतः बलवान् समान बल वालेपर ही क्रोध किया करता है, न कि दुर्बलपर।

गण्डस्थलेषु मदवारिषु बद्धराग—
मत्तभ्रमद्भ्रमरपादतलाहतोऽपि।
कोपन्न गच्छति नितान्तबलोऽपि नागः
तुल्ये बले तु बलवान् परिकोपमेति ॥५३५॥

सच्ची, झूठी, कठोर, प्रिय बोलने वाली, हिंसक, दयालु, स्वार्थ

वाली, दान करने वाली, नित्य व्यय करने वाली और बहुत रत्न धन कमाने वाली राजाओंकी नीति वेश्याओंके समान अनेक रूप धारण करती है।

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुररत्नधनागमा च
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥५३६॥

(महाकवि कालिदासरचित मेघदूत काव्यमें)—

प्रवासित यक्ष मेघको दूत बनाकर अपनी प्रियाके प्रति सन्देश भेजता हुआ कह रहा है कि हे कल्याणि! मैं अपनेको बहुत मानता हुआ अपने ही सहारे रहता हूँ, अतः तुम भी कातर कदापि न होना।

जिसको अत्यन्त सुख अथवा दुख सर्वदा लगा रहता है। उसकी दशा गाड़ीके पहियेके समान नीचे ऊपर आती जाती रहती है।

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि! त्वमपि नितरां मागमः कातरत्वम्।
"कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" ॥५३७॥

भीतर छिपे हैं साँप जिसमें ऐसे घरके समान, दावाग्निसे व्याप्त वनके समान, मगरसे भरे हुये सुन्दर कमलोंसे सुशोभित तालाबके समान, झूंठ बोलने वाले असभ्य दुष्टोंसे परिपूर्ण, समुद्रवत् राजाओंके घरमें चकित होकर बड़ी कठिनाईसे जाया जाता है।

अन्तर्लीनभुजङ्गमं गृहमिव ज्वालाकुलं वा वनम्
ग्राहाकीर्णमिवाभिरामकमलच्छायासनाथं सरः ।
नानादुष्टजनैरसत्यवचनासक्तैरनार्यैर्वृतम्
दुःखेन प्रतिगम्यते प्रचकितैः राज्ञां गृहं वार्धिवत् ।।५३८।।

सफल क्रोध वाले पुरुषकी आपत्तिको दूर करनेके लिये मनुष्य स्वयं ही अनुकूल हो जाते हैं। परन्तु क्रोधरहित पुरुषको न मित्र से ही आदर प्राप्त होता है और न शत्रु ही डरता है।

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः ।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः ।।५३९।।

श्री मन्महोदय ! न ईर्ष्यासे, न तनिक भी अहंकारसे और न केवल द्वेषके कारण दूषित करनेकी चतुराई ही से किन्तु तुम्हारी प्रार्थना और प्रेमके भङ्ग हो जानेके भयसे ही मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ कहा है।

नो मत्सरान्न च मनागपि दर्पभावाम्-
नो द्वेषमात्रपरिदूषणनैपुणाद्वा ।
त्वत्प्रार्थनाप्रणयभङ्गभयैव किन्तु
श्रीमन्मया स्वमतितः किल किञ्चिदुक्तम् ।।५४०।।

सज्जनोंकी उपासना करनी चाहिये, चाहे वे उपदेश न भी

करते हों। क्योंकि जो उनके निजी वार्तालाप हैं वही सदुपदेश हो जाते हैं।

परिचरितव्याः सन्तो यद्यपि कथयन्ति नोपदेशं ते।
यास्तेषां स्वैरकथास्ता एव भवन्ति सदुपदेशाः ॥५४१॥

एकके निन्दित कामको देखकर दूसरा भी करने लगता है। वस्तुतः लोग परम्पराका ही अनुकरण करते हैं न कि यथार्थताका।

एकस्य कर्म संवीक्ष्य करोत्यन्योऽपि गर्हितम्।
गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः ॥५४२॥

राजा दुष्यन्त कण्व ऋषिके आश्रममें कुमारी शकुन्तलापर आसक्त होकर तर्क कर रहा है कि यह निःसन्देह क्षत्रियके परिग्रहणके योग्य है। ब्राह्मण कन्या कदापि नहीं है। क्योंकि मेरा निर्दोष मन इसे चाह रहा है। वस्तुतः सन्देह वाली वस्तुओंके विषयमें सज्जनोंके मनकी प्रवृत्ति ही प्रमाण है।

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥५४३

ऐश्वर्यका भूषण सज्जनता, शूरताका मित भाषण, ज्ञानका शान्ति, विद्वत्ताका विनय, धनका उचित व्यय, तपका अक्रोध, समर्थका क्षमा और धर्मका भूषण निश्छलता है। यह तो सबका पृथक् पृथक् हुआ परन्तु सबसे बढ़कर भूषण शील है।

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयं वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥५४४॥

गाय और सर्पके समान योग्यायोग्य स्थानको पाकर द्रव्यके गुणोंमें परिवर्तन होता है। जैसे तृणसे गायके अन्दर दूध पैदा होता है और दूध जैसी वस्तुसे सर्पके अन्दर विष पैदा होता है।

पात्रापात्रविशेषोऽस्ति धेनुपन्नगयोरिव ।
तृणादुत्पद्यते दुग्धं दुग्धादुत्पद्यते विषम् ॥५४५॥

स्वामीमें पांच गुण होने चाहिये (१) योग्यको दान करना (२) गुणमें अनुराग करना (३) कुटुम्बके साथ भोगना (४) दूसरों के भावोंको समझना और (५) रणमें युद्ध करना।

पात्रे त्यागी गुणे रागी भोगी परिजनैः सह ।
भावबोद्धा रणे योद्धा प्रभुः पञ्चगुणो भवेत् ॥५४६॥

अपने कुटुम्बके प्रति अनुकूलता, आश्रित जनोंपर दया, दुर्जनों के प्रति सदा शठता, सज्जनोंके साथ प्रेम, राजाके साथ नीति, विद्वानोंके साथ नम्रता, शत्रुओंके प्रति शूरता, गुरुजनोंके प्रति क्षमा और स्त्रीजनोंके साथ धूर्तता करनी चाहिये। इन कलाओं में जो पुरुष कुशल है, उन्हींसे लोक स्थित है।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जने
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता
ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलाः तेष्वेव लोकस्थितिः ॥

गुणहीन प्राणियोंपर भी सज्जन लोग दया ही करते हैं। चन्द्रमा चाण्डालोंके घरपरसे चाँदनीको नहीं हटाता।

निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मसु ॥५४८॥

दुष्टों और काँटोंका प्रतीकार दो ही प्रकारसे किया जा सकता है (१) जूताके प्रहारसे मुख तोड़ देना अथवा (२) दूरसे ही त्याग देना।

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानन्मुखभङ्गो वा दूरतो वा विसर्जनम् ॥५४९॥

विद्वत्ता और नृपत्व दोनों समान कभी भी नहीं कहे जा सकते। राजा स्वदेशमें ही सम्मान पाता है किन्तु विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है।

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥५५०॥

केयूर (विजायठ), चन्द्रहार, स्नान, विलेपन (चन्दनादि), फूल और सुसज्जित बाल सदा विभूषित नहीं करते, केवल संस्कृत वाणी ही पुरुषको अलङ्कृत करती है। अन्य भूषण सब क्षीण हो जाते हैं। वस्तुतः वाग्भूषण ही भूषण है।

केयूरा न विभूषयन्ति सततं हारा न चन्द्रोज्वलाः
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्द्धजा।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ५५१

पुरुष अपने शरीरको बहुत कष्ट देकर जिस फल (परिणाम) को प्राप्त करता है, उसे स्त्री बड़ी सरलताके साथ ही पतिकी सेवा करके प्राप्त कर लेती है।

कायक्लेशेन महता पुरुषः प्राप्नुयात् फलम्।
तत्फलं लभते नारी सुखेन पतिपूजया ॥५५२॥

जो ज्ञान पुस्तकमें ही लिखा रहे, उपस्थित (याद) न हो, और जो धन दूसरेके हाथमें चला गया हो अपने पास न हो, वह विद्या और वह धन कार्य आ पड़नेपर काममें नहीं आ सकता।

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम्।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥५५३॥

सांसारिक झंझटोंसे थक गया है चित्त जिनका ऐसे पुरुषोंके विश्रामके लिये तीन स्थान हैं (१) सन्तान (२) स्त्री और (३) सज्जनोंका सङ्ग।

संसारश्रान्तचित्तानां तिस्रो विश्रान्तिभूमयः।
अपत्यं च कलत्रं च सतां सङ्गतिरेव च ॥५५४॥

धनोपार्जनके निमित्त समस्त उपायोंके बीच पण्यसंग्रह (दुकानदारी) सर्वोत्तम उपाय है। केवल यही धन कमानेके लिये श्रेष्ठ है, इसके अतिरिक्त अन्य उपाय सब सन्देहास्पद हैं।

उपायानां च सर्वेषामुपायः पण्यसंग्रहः।
धनार्थं शस्यते ह्येकस्तदन्यः संशयात्मकः ॥५५५॥

अनेकोंने भिक्षा मांगना आरम्भ कर दिया, आश्चर्य है कि राजा उचित देता नहीं, खेती करना बहुत क्लिष्ट है, विद्या पढ़ना भी सदैव गुरुके साथ विनय पूर्वक रहनेके कारण बहुत कठिन है और दूसरोंके हाथमें दी हुई थैली (रकम) के नष्ट हो जानेसे व्याज पर रुपया देनेमें भी दरिद्रता आ जाती है। अतः व्यापारसे बढ़कर कोई जीविका नहीं है।

कृता भिक्षानेकैर्वितरति नृपो नोचितमहो
कृषिः क्लिष्टा विद्या गुरुविनयवृत्त्यातिविषमा।

कुसीदाद्दारिद्र्यं परकरगतग्रन्थिशमना-
न्न मन्ये वाणिज्यात्किमपि परमं वर्त्तनमिह॥५५६॥

जिस देशमें परीक्षक (रतन पारखी) नहीं होते वहाँ समुद्र में उत्पन्न होने वाले रत्नोंका मूल्य नहीं लगता। अहीरोंके देश में चन्द्रकान्त मणिको तीन कौड़ी ही में गोप लोग बेचते हैं।

परीक्षका यत्र न सन्ति देशे नार्घन्ति रत्नानि समुद्रजानि।
आभीरदेशे किल चन्द्रकान्तं त्रिभिर्वराटैर्विपणन्ति गोपाः॥

रेशम कीड़ोंसे, स्वर्ण पत्थर (खानि) से, दूब मिट्टीसे, कमल कीचड़से, चन्द्रमा समुद्रसे, नील कमल गोबर युक्त कीचड़से, अग्नि काष्ठसे, मणि सर्पके फणसे और गौरोचन गायके पित्तसे पैदा होता है। वस्तुतः गुणी जन अपने गुणके उदय होने ही से विख्यात होते हैं न कि पैदायशसे।

कौशेयं कृमिजं सुवर्णमुपलाद् दूर्वाऽपि गोरोमतः
पङ्कात्तामरसं शशाङ्क उदधेरिन्दीवरं गोमयात्।
काष्ठादग्निरहेः फणादपि मणिर्गोपित्ततो रोचना
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना॥

मन, वचन और शरीरमें पुण्यामृतसे परिपूर्ण (अर्थात् हर प्रकारसे पुण्य करने वाले) उपकारोंसे तीनों लोकोंको तृप्त करने वाले और दूसरोंके अणुमात्र गुणको पर्वतके बराबर मानकर अपने हृदयमें प्रफुल्लित होने वाले सज्जन कितने हैं? अर्थात् इन गुणोंसे सम्पन्न सज्जन संसारमें इने गिने ही हैं।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।

परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥५५९॥

आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु ये पांच जीवात्माके इस संसारमें गर्भस्थ होते ही उसके लिये बना दिये जाते हैं।

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानीह सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥५६०॥

विद्या नामक अन्तर्धन किसीसे छीना नहीं जा सकता, जो कि सर्वदा कल्याण ही करता है, अर्थीको देनेसे सदा सम्मान मिलता और वह धन बढ़ता ही जाता है, कल्पान्त होनेपर भी नष्ट नहीं होता, जिनके पास विद्याधन है उनका सम्मान राजा करता है, फिर विद्वानोंसे कौन स्पर्धा कर सकता है ?

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्य मानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनम्
येषांते प्रतिमानमुज्झति नृपाः कस्तैः सह स्पर्द्धते॥

तप करनेकीसीमा (हद) मुक्ति पाना है, समस्त गुणोंकी सीमा उसका फैलाना है, कला कौशलकी सीमा काव्य रचना है, जनेन्द्रिय सुखकी सीमा सुमुखी रमणीका पाना है, भयकी सीमा मृत्यु है। श्रेष्ठ कुलकी सीमा आश्रितोपाश्रितोंका भरण-पोषण है, क्षुधाकी सीमा भोजन प्राप्ति है और वेदशास्त्राध्ययनकी सीमा हरिकथा कहना है।

तपःसीमा मुक्तिः सकलगुणसीमा वितरणं
कलासीमा काव्यं जननसुखसीमा सुवदना।

भियः सीमा मृत्युः सुकृतकुलसीमाश्रितभृतिः
क्षुधासीमानान्ता श्रुतिसुखरसीमा हरिकथा ॥५६२॥

प्रतिष्ठा घट जानेपर, धन नष्ट हो जानेपर, प्रार्थीके निराश होकर लौट जानेपर, बान्धवोंके क्षीण हो जानेपर, कुटुम्बके विनष्ट हो जानेपर और यौवन (जवानी) के क्रमशः गत हो जानेपर बुद्धिमानोंके लिये केवल यही उचित है कि वे कहीं गङ्गाजीके जलसे पवित्र हो (धुल) रहे हैं पत्थर जिनके ऐसे हिमालयकी कन्दरा मय कुञ्जमें निवास करें।

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि
क्षीणे बन्धुजने मृते परिजने नष्टे शनैर्यौवने।
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः—
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित्॥५६३॥

आज तक भगवान् शंकर कालकूट विषका परित्याग नहीं करते और कूर्मस्वरूप भगवान् विष्णु अपनी पीठपर पृथ्वी धारण ही किये हैं, समुद्र भी असह्य वडवानलको धारण ही किये हैं। वस्तुतः सज्जन लोग अङ्गीकार किये हुये वचन व कार्यका सदा पालन ही करते हैं।

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं,
कूर्मो बिभर्ति धरणीं खलु पृष्ठभागे।
अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्निम्,
अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥५६४॥

यदि लोभ है तो और दुर्गुणोंसे क्या? पैशुन्य (चुगलखोरी) है तो अन्य पापोंसे क्या? सत्य भाषण है तो तप करनेसे क्या?

मन पवित्र है तो तीर्थ करनेसे क्या ? सज्जनता है तो अन्य गुणों से क्या ? अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त है तो भूषण धारण करनेसे क्या ? श्रेष्ठ विद्या पासमें है तो धनसे क्या ? और यदि अपयश हो गया है तो मृत्युसे क्या ? क्योंकि वह मृत्युसे बढ़कर है।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥

सच्चा मित्र पापकर्मसे हटाता है, हितकर्ममें लगाता है, रहस्य को बताता है, गुणोंको प्रकट करता है, आपत्ति आ पड़नेपर त्यागता नहीं और धनको देता है, सज्जनोंने इसे ही श्रेष्ठ मित्रका लक्षण कहा है।

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति वित्तं
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥५६६॥

उस कविता और उस वनिता (स्त्री) से क्या फल ? जिसने पद-विन्यास (पद-योजना व पैर रखने) मात्रसे ही मन न हर लिया। अर्थात् जिस कविताकी पद योजना मनोहर नहीं है और जिस रमणीकी पाद विक्षेप मुग्धकर नहीं है उसका होना ही व्यर्थ है।

तया कवितया किंवा, किंवा वनितया तया
पदविन्यासमात्रेण यया नापहृतं मनः ॥५६७॥

साहित्य और सङ्गीत-विद्यासे रहित पुरुष, बिना पूंछ सींग

के पशु है। वह तृण न खाता हुआ जो जीवन बिताता है सो मानों पशुवोंका परम सौभाग्य है।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणन्न खादन्नपि जीवमानः तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥५६८॥

लालन (दुलार) करनेमें बहुतसे दोष हैं और ताड़न (डाट-डपट करनेमें बहुतसे गुण हैं। अतः शिष्य और पुत्रका ताड़न ही करना चाहिये न कि लालन।

लालनाद्बहवो दोषास्ताडनाद्बहवो गुणाः।
तस्माच्छिष्यं च पुत्रं च ताडयेन्न तु लालयेत् ॥५६९॥

चिता और चिन्ता इन दोनोंके बीच चिन्ता ही बढ़कर है। चिता तो निर्जीवको जलाती है किन्तु चिन्ता सजीवको भी जला देती है।

चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता ह्येव गरीयसी।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता चैव सजीवकम् ॥५७०॥

शरीर शिथिल होगया है, चलनेकी शक्ति क्षीण हो गई है, दाँत सब गिर गये हैं, नेत्रकी ज्योति हीन होगई है, रूप नष्ट हो गया है, मुखसे लार टपक रही है, पारिवारिक जन बात नहीं करते, पत्नी सेवा नहीं करती और बड़े दुःखकी बात है कि पुत्र भी जराक्रान्त वृद्ध पुरुषका अनादर करता है।

गात्रं संकुलितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्भ्रश्यति रूपमेव ह्रसते वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते
हा कष्टं जरयाभिभूतपुरुषं पुत्रोऽप्यवज्ञायते ॥५७१॥

शिवजी जब शक्तिसे युक्त होते हैं तभी संहार करनेमें समर्थ होते हैं। बिना शक्तिके कुछ हिला तक नहीं सकते। इसलिये ब्रह्मा विष्णु और महेशकी भी आराध्य हे देवि ! जिसने पुण्य नहीं किया है ऐसा पुरुष तुम्हें प्रणाम करने अथवा स्तुति करनेके लिये कैसे समर्थ हो सकता है ?

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्च्यादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥५७२॥

यह बात पुरानी है अतएव सब ठीक है और यह बात नई है अतएव निन्द्य है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः सज्जन लोग परीक्षा करके ही जो दोनोंमें ठीक होता है उसीको मानते हैं। किन्तु मूर्ख तो दूसरे ही के विश्वासपर चलता है।

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥५७३॥

शास्त्र पढ़ करके भी मूर्ख होते हैं किन्तु जो पुरुष उसके अनुसार आचरण करता है वस्तुतः वही विद्वान् है। रोगियोंके लिये भली भांति सोचकर निश्चितकी गई हुई औषध केवल नाम उच्चारण करने मात्रसे (बिना खिलाये) नीरोग नहीं कर सकती।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान्पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम्॥५६४॥

तृण वृत्ति वाले मृग, जल वृत्ति वाले मीन (मछली) और सन्तोष वृत्ति वाले सज्जनोंके भी इस संसारमें शिकारी, मछुआ और चुगलखोर बिना कारणके ही वैरी रहते हैं।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना अकारणं वैरिणो जगति ॥५७५॥

यदि किसीसे सदा प्रीति स्थिर रखना चाहे तो तीन कर्म कदापि न करे (१) बकवाद (२) रुपयेका लेन देन और (३) परोक्षमें उसके घरकी स्त्रीके साथ बात चीत।

यदीच्छेत्परमां प्रीतिं त्रीणि तत्र न कारयेत् ।
वाग्वादमर्थसम्बन्धं परोक्षे दारभाषणम् ॥५७६॥

अधम पुरुष धन ही चाहते हैं, मध्यम पुरुष धन और मान दोनों चाहते हैं और उत्तम पुरुष मान ही चाहते हैं। वस्तुतः मान ही महापुरुषोंके लिये परम धन है।

अधमा धनमिच्छन्ति धनंमानौ च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥५७७॥

समुद्र मन्थन करते समय बहु मूल्य रत्नोंसे देव लोग सन्तुष्ट न हुये और न भयङ्कर विषसे डरे ही, किन्तु जब तक अमृत प्राप्त नहीं कर लिया तब तक हटे नहीं। वस्तुतः धीर लोग अपने निश्चित अर्थको बिना प्राप्त किये उद्योग नहीं छोड़ते।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः॥५७८

जो लोग आशाके दास हैं, उन्हें सब लोगोंका दास बनना पड़ता है। और आशा जिनकी दासी है, उनके सब लोग दास हो जाते हैं।

आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य ।
येषामाशा दासी तेषां दासायते लोकः ॥५७९॥

अपनेको अजर (कभी न वृद्ध होने वाला) और अमर (कभी न मरने वाला) समझ कर बुद्धिमान् पुरुष विद्या और धनका उपार्जन करे। किन्तु मृत्युने चोटी पकड़ लिया है ऐसा समझता हुआ धर्मका आचरण करे।

अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ॥५८०॥

सज्जनता पूर्ण होनेसे धन्य है जन्म जिनका ऐसे पुरुष दूसरों के दोषोंको छोड़ कर गुणको ही खोजा करते हैं। वायु, चन्दन वृक्षसे साँपोंके विषको छोड़ कर उसकी सुगन्धिको ही ग्रहण करता है।

सौजन्यधन्यजनुषः पुरुषाः परेषां
दोषान् विहाय गुणमेव गवेषयन्ति ।
त्यक्त्वा भुजङ्गमविषं हि पटीरगर्भात्
सौगन्ध्यमेव पवनाः परिवाहयन्ति ॥५८१॥

ऐ मित्र चातक ! (पपीहा) जरा सावधान चित्त होकर सुनो—आकाशमें बादल बहुतसे हैं किन्तु सब ऐसे नहीं हैं कि जल बरसें। उनमें कोई तो बरस करके पृथ्वीको तर कर देते हैं और कोई व्यर्थ गरजते ही हैं बरसते नहीं। अतः जिस जिस (बादल) को देखो उस उसके आगे दीन वचन कभी न बोलो।

रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयताम्
अम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वेऽपि नैतादृशाः ।

केचिद्वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्वृथा
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥

सुमति ही सबके लिये सम्पत्ति और कुमति ही सबके लिये आपत्तिका कारण है, स्त्रियाँ युवकके साथ परिचय हो जानेसे वृद्ध को त्याग देती हैं। कुलमें एक ही पुरुष होता है जो कि कुटुम्बका पालन करता है। स्त्री जब पुरुषके समान आचरण करने लगती है तब वह घर नष्ट हो जाता है।

सर्वस्य द्वे सुमतिकुमती सम्पदापत्तिहेतू
वृद्धो यूना सह परिचयात् त्यज्यते कामिनीभिः।
एको गोत्रे स भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति
स्त्री पुंवच्च प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम् ॥५८३॥

व्यवस्थित और शान्त चित्त वाला पुरुष क्रुद्ध होनेपर भी भय नहीं पैदा करता। किन्तु अव्यवस्थित चित्त वालेकी प्रसन्नता भी भयङ्कर ही होती है।

व्यवस्थितः प्रशान्तात्मा कुपितोप्यभयङ्करः।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः ॥५८४॥

अत्यन्त बुद्धि वाला मेधावी पुरुष अल्पायु या दरिद्र अथवा निःसन्तान (इन तीनोंमें एक अवश्य) होता है।

अत्यन्तमतिमेधावी त्रयाणामेकमश्नुते।
अल्पायुषो दरिद्रो वा ह्यनपत्यो न संशयः ॥५८५॥

जिसको कुछ नहीं देना है उसे उत्तर क्या दे ? (कुछ भी नहीं)

आज सायंकाल, कल प्रातःकाल इस प्रकार बार सायं प्रातः वादा करता हुआ टरका देवे।

यस्य किञ्चिन्नदातव्यंतस्य देयं किमुत्तरम्।
अद्य सायं पुनः प्रातः सायम्प्रातः पुनः पुनः ॥५८६॥

शरीर जीर्ण शीर्ण हो गया है, शिरके बाल सब श्वेत हो गये हैं, मुँह भी दाँतोंसे रहित हो गया है और वृद्ध इतना हो गया है कि दण्डके सहारे ही चल सकता है तो भी आशा पिण्डको नहीं छोड़ती।

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्॥

यदि स्वयं पृथ्वी अन्नको खाने लगे, माता पुत्र-सुखको नष्ट करने लगे, समुद्र अपनी सीमाको उल्लङ्घन करने लगे, अग्नि पृथ्वीको भस्म करने लगे, आकाश लोगोंके मस्तकपर गिरने लगे, अन्न ही विष होने लगे, और पृथ्वीका पालन करने वाला अर्थात्-राजा स्वयम् अन्याय करने लगे, तो उसे कौन रोक सकता है।

सस्यानि स्वयमत्ति चेद्वसुमती माता सुखं हन्ति चे
द्वेलामम्बुनिधिर्विलङ्घयति चेद्भूमिं दहेत्पावकः।
आकाशं जनमस्तके पतति चेदन्नं विषं चेद्भवेत्
अन्यायंकुरुते यदा क्षितिपतिः कस्तं निरोद्धुं क्षमः॥५८८॥

उद्योगसे डरने वाले पुरुषकी ज्ञान-राशि उसको तनिक भी लाभ नहीं पहुँचा सकती। अन्धेकी हथेली पर भी रक्खा हुआ दीपक क्या उसे वस्तुओंको दिखा सकता है?

न स्वल्पमप्यध्यवसायभीरोः करोति विज्ञाननिधिर्गुणं हि।
अन्धस्य किं हस्ततलस्थितोऽपि प्रकाशयत्यर्थमिह प्रदीपः॥

विद्वत्ताको देखना चाहिये, वस्त्रके आडम्बरसे क्या ? शिवजी वस्त्र रहित (नग्न) होनेपर भी क्या सर्वज्ञ नहीं कहलाते ?

अक्षराणि परीक्ष्यन्तामम्बराडम्बरेण किम् ।
शम्भुरम्बरहीनोऽपि सर्वज्ञः किं न जायते ॥५६०॥

वस्त्रसे क्या ? ऐसा कभी न सोचना चाहिये, योग्यता प्रकाशित करनेके लिये वस्त्र ही प्रधान उपाय है। समुद्रने पीताम्बर (पीत वस्त्र) देखकर ही विष्णुको अपनी लड़की (लक्ष्मी) दिया और नग्न देखकर ही शिवजीको विष दिया।

किं वाससैवं न विचारणीयं
वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः ।
पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां
दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः ॥५६१॥

धन, अन्नके लेन देनमें, विद्योपार्जन करनेमें, भोजन करनेमें और पारस्परिक व्यवहारमें जो लज्जाको त्याग देता है वही सुखी रहता है।

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥५६२॥

अर्जुनकी प्रतिज्ञायें थीं, न दीनता दिखाना और न युद्धसे भागना क्योंकि आयु (यदि अवशिष्ट है तो वह) मर्मों (शरीरके अङ्गों) की रक्षा करती है और जीवनके लिये वही अन्न भी देती है।

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम् ।
आयू रक्षति मर्माणि आयुरन्नं प्रयच्छति ॥५६३॥

अपने ही से अपना उद्धार करना चाहिये, कभी भी अपनेको ग्लान न करना चाहिये, क्योंकि मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु (सहायक) है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैवह्याऽऽत्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५९४॥

व्यापार, कलह, खुजली, जुआ, मद्य, परस्त्री-गमन, भोजन, मैथुन और निद्रा (सोना) सेवन करनेसे प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है।

उद्यमः कलहः कण्डूर्द्यूतं मद्यं परस्त्रियः ।
आहारो मैथुनं निद्रा सेवनात्तु विवर्धते ॥५९५॥

देशोंका परिभ्रमण, पण्डितोंके साथ मित्रता, वेश्या संग, राज सभामें बैठना और अनेक शास्त्रोंका अनुशीलन करना ये पाँच चतुर होनेके प्रधान कारण हैं।

देशाटनं पण्डितमित्रता च वाराङ्गना राजसभाप्रवेशः ।
अनेकशास्त्राणि विलोकितानि चातुर्यमूलानि भवन्ति पञ्च॥

सिद्ध (पका हुआ) भोजन, पका फल, स्त्रीका प्रथम यौवन, सुभाषित और ताम्बूलको बुद्धिमान् पुरुष तुरन्त ही ग्रहण करता है।

सिद्धमन्नं फलं पक्वं नारीप्रथमयौवनम् ।
सुभाषितं च ताम्बूलं सद्यो गृह्णाति बुद्धिमान् ॥५९७॥

अध्यापक, वैद्य, ऋतुकालमें स्त्री, प्रसूता और दूती (कुटनी) ये कार्य समाप्त हो जाने पर तृणवत् माने जाते हैं।

उपाध्यायश्च वैद्यश्च ऋतुकाले वराङ्गना ।
सूतिका दूतिका चैव कार्यान्ते तृणवत्स्मृताः ॥५९८॥

जलसे अग्निकी ज्वाला, छत्रसे धूप, तीक्ष्ण अंकुशसे मतवाला हाथी, डंडेसे बैल और गधा, औषधियोंसे रोग और अनेक प्रकार के मन्त्रोंके प्रयोगसे विष हटाये जा सकते हैं। वस्तुतः सबकी औषधि (उपाय) शास्त्रमें कही है किन्तु मूर्खका कोई भी इलाज नहीं है।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्॥५९९

ऐ मित्र! मूर्खता मुझे भी अच्छी लगती है क्योंकि उसमें आठ गुण हैं–निश्चिन्त रहना, बहुत खानेमें रुचि, रात दिन खूब सोना, कर्तव्य अकर्तव्यके विचारको न देखना न सुनना, मान और अपमानको समान ही मानना। एवं सब लोगोंके मस्तकपर पैर रख कर (सर्वोपरि होकर) मूर्ख सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है।

मूर्खत्वं हि सखे ! ममापि रुचिरं तस्मिन् यदष्टौ गुणा
निश्चिन्तो बहुभोजनेऽत्रभिरुची रात्रौ दिवा सुप्यते ।
कार्याकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमानौ समौ
कृत्वा सर्वजनस्य मूर्धनि पदं मूर्खः सुखं जीवति ॥६००॥

बहुत बोलना लाघव पैदा करता है और मौन रहना उन्नत करता है। इसी हेतु नूपुर पैरमें बाँधा जाता है और हार गलेमें सुशोभित होता है।

मौखर्यं लाघवकरं मौनमुन्नतिकारकम् ।
मुखरं नूपुरं पादे कण्ठे हारो विराजते ॥६०१॥

संसारमें गुणी बहुत हैं परन्तु गुणकी कद्र करने वाले ही कम (दुर्लभ) हैं। चन्द्रमाकी किरणोंके रसास्वादन करनेमें चतुर है रसना जिनकी ऐसे तो चकोर ही हैं।

गुणिनोऽपि सन्ति बहवो गुणवेत्तारः सुदुर्लभा जगति ।
हिमकरकररसरसने रसनाचतुराश्चकोरका एव ॥६०२॥

स्फुट संग्रह

हे विकसित कमल पत्रके सदृश नेत्र वाले विशाल बुद्धि व्यास भगवान्! मैं आपको नमस्कार करता हूं। आपने ज्ञान रूपी स्नेह भरकर महाभारत ग्रन्थ रूपी दीपका प्रकाशन किया है।

नमोस्तुते व्यास! विशाल बुद्धे!
फुल्लारविन्दायत पत्र नेत्र!।
येनत्वया भारत तैल पूर्णः
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥ १॥

वृन्दावनके निर्मल यमुना तटपर राम सुदामादि सहचरोंके साथ भ्रमण करते हुए मधुर मुरली वादनमें निपुण! प्रभो कृष्ण! हमपर प्रसन्न हो ऐसा कहते हुये हमारा समय निमिषकी तरह (पलक झपनेके समान) कब वीतेगा।

कदा वृन्दारण्ये विमल यमुनातीर पुलिने
व्रजन्तं गोविन्दं हलधर सुदामादिसहितम्।
अये कृष्ण स्वामिन् मधुर मुरली वादन विभो!
प्रसीदेत्याक्रोशन् निमिषमिव नेष्यामि दिवसान्॥ २॥

हे कृष्ण भोजन बनाते समय बार-बार मधुर मुरलीकी ध्वनि मत करो। आपकी ध्वनिसे नीरस काष्ठ सरस हो जाता है और अग्निमन्द हो जाती है।

मा कुरु मुरलीध्वनि ध्वनिमिह रन्धन समये मुहुर्मुहुः कृष्ण!।
नीरसमेधो रसतां याति कृशानुश्च कृशतनुताम्॥ ३॥

हे माधव आपने एक ही हाथसे गोपबालकोंकी सहायतासे

गोवर्धन पर्वतको धारण कर लोक परलोकमें ख्याति प्राप्तकी। परन्तु आप जैसे त्रिलोकीको धारण करने वाले महा पुरुषको मैं कुचाग्रपर पुष्पकी तरह धारण करती हू, तब भी मुझे कोई कीर्ति प्राप्त नहीं हुई। अतः हे कृष्ण! क्यों अपनी बडाई हांकते हो यश तो पुण्य ही से प्राप्त होना है।

एकेनापि करेण गोपनिकरैः शश्वद्धृतो लीलया
तेनत्वं दिविभूतले च विदितो गोवर्धनोद्धारकः।
त्वां त्रैलोक्य वहं वहामिकुचयोरग्रे सदा पुष्पवत्
तत्किं माधव जल्पनैर्ननुवृथापुण्यैर्यशोलभ्यते ॥ ४ ॥

भगवान् कृष्णका कीर्तन चित रूपी दर्पणका मार्जन करने वाला है; संसार रूपी दावाग्निका शमन करने वाला है, कल्याण रूपी चान्द्रका वितरण करने वाला है, और विद्यावधू सरस्वतीका जीवन है, आनन्द रूपी समुद्रका बढाने वाला है; प्रतिदिन पूर्ण आनन्दामृतका आस्वादन कराने वाला है और सर्वात्माका आनन्दापगाहन कराने वाला है, अतः वह सदा विजयी रहे।

चेतोदर्पण मार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वापणम्
श्रेयः कैरवचन्द्रिका वितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मास्नपनं परं विजयते श्री कृष्ण संकीर्तनम् ॥ ५ ॥

आरोग्य और मोक्ष चाहने वाला पुरुष प्रतिदिन ऋतु, हरीतकीका सेवन करे और गायत्रीका जप करें।

हरिं हरीतकीं चैव गायत्रीं च दिने दिने।
आरोग्यार्थी च मोक्षार्थी भक्षयेत् जपयेत् सदा॥ ६ ॥

ऋतु हरीतकी सेवन करनेका विधान यह है कि प्रति व्यक्ति मात्रा स्थिर कर प्रतिदिन निम्न लिखित अनुपानके साथ सेवन करें। अनुपानोंकी मात्रा भी व्यक्तिगत आवश्यकताके अनुसार स्थिर करनी चाहिये। साधारण वयस्क पुरुषके लिये ६ माशासे १ तोला तक प्रतिदिन प्रातःकाल अनुपानके साथ जलसे सेवन करना उपयुक्त है। हरीतकी और अनुपान द्रव्योंका सूक्ष्म कपड़-छान चूर्ण बना लेना चाहिये। वर्षा ऋतुमें सैंधव, शरद्‌में शर्करा, हेमन्तमें शुंठी, शिशिरमें पिप्पली, वसन्तमें मधु और ग्रीष्ममें गुड़ अनुपान दिये जाते हैं।

सिन्धुत्थशर्करा शुंठि कणा मधु गुडैः क्रमात्।
वर्षादिष्वभयाप्राश्या रसायन गुणैषिणा॥ ७॥

रोग छः कारणोंसे प्रायः होते हैं, अतः स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये इनसे बचो।

(१) जल अधिक पीनेसे (२) अत्यन्त स्त्री प्रसंगसे (३) दिन में शयन करनेसे (४) रात्रिमें जागरण करनेसे (५) मूत्रके अवरोधसे और (६) मलके वेगको रोकनेसे।

अत्यम्बुपानदतिमैथुनाच्च दिवाशयाज्जागरणाच्च रात्रौ।
संरोधनात्मूत्रपुरीषयोश्च षड्भिः प्रकारैः प्रभवन्ति रोगाः॥८॥

रोगाक्रान्त शरीरकी परीक्षा निम्न आठ बातोंको देखकर करें।

(१) नाडी (२) मूत्र (३) मल (४) जिह्वा (५) शब्द (६) स्पर्श (७) नेत्र और (८) शरीराकृति।

रोगाक्रान्त शरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाडीं मूत्रं मलं जिह्वां शब्द स्पर्श दृगाकृतीः॥ ९॥

मूर्ख चिकित्सकोंसे सदा बचे रहें। आजकल कलियुगमें मालि

चर्मकार, नापित, धोबी और विशेष करके वृद्ध रंडा भोले भाले लोगोंको फंसानेके लिये चिकित्सक बन जाते हैं।

मालाकारश्चर्मकारः नापितो रजकस्तथा।
वृद्धारंडा विशेषेण कलौ पंच चिकित्सकाः ॥१०॥

आजकल खाद्य सामग्रीकी विकृतिसे अनेक रोग पैदा होते हैं। उसमें जुकाम, खांसी, प्रतिश्याय, क्षय रोग आदिके उपद्रव हो रहे हैं, उसके लिये निम्न योग शतशः अनुभूत हैं।

पीपल, यव (जो), कुलत्थ, शुंठी और अनार दानेके क्वाथमें मांस रस बनाकर और स्नेह मिलाकर पान करे इससे छः प्रकारके पीनस आदि रोग नष्ट होते हैं।

स पिप्पलीकं स यवं स कुलत्थं सनागरम्।
दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमांसरसं पिबेत् ॥११॥
तेन षड् विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः। (वाग्भट)

रसौषधियोंके सेवनसे मृत प्रायः पुरुष भी जीवित हो जाता है, ऐसी ख्याति निम्न वाक्यमें की गई है।

रसभेषज संपर्कात् मूर्च्छितोऽपि हि जीवति ॥१२॥

प्राचीन चिकित्सकोंके मतानुसार मानव शरीरमें दस दस वर्ष के बाद परिवर्तन होता है उसका क्रम निम्न प्रकारसे हैं। १० वर्ष तक बालपन रहता है। २० तक शरीरकी वृद्धि होती है और युव भाव प्रकट होता है। ३० वर्षकी आयु तक शरीरकी कान्ति (प्रभा) का प्रादुर्भाव होता है। ४० तक बुद्धिका विकास होता है। फिर शरीरमें ह्रास होने लगता है। ५० तक चर्ममें सिकुडन पैदा होने लगती है। ६० में वीर्यकी कमी हो जाती है। ७० वर्षमें नेत्रज्योति कम हो जाती है। ८० में बधिरताका प्रभाव होने लगता है। ९०में

मानस दौर्बल्य होता है और शतायु होते होते सब इन्द्रियां प्रायः नष्ट हो जाती हैं।

बाल्यं वृद्धि प्रभा मेधा त्वक् शुक्राक्षि श्रुतीन्द्रियम् ।
दशकेषु क्रमाद्यान्ति मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥१३॥

जब मनुष्य वृद्ध हो जाय तब उसे धन, जन, सुन्दरी, कविता आदिकी इच्छा छोड कर केवल भगवान्की कामना करनी चाहिए एवं जन्म जन्मान्तरोंके पापोंके नाशके लिये अहैतुकी भक्तिकी कामना करनी चाहिये।

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥१४॥

हे भगवान् तेरे भजन ध्यानसे मेरे नयन कब अश्रुधारा बहाने लगेंगे और तेरे नाम स्मरण मात्रसे कब मेरी वाणी व शरीर गद् गद् हो जायेंगे।

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गद् रुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ॥१५॥

परमात्माका भजन करनेके लिये अभिमानका त्याग करके अपने आपको तृणसे भी नीचा समझे, कष्ट सहनमें वृक्षोंसे सहिष्णुता सीखे, एवं अवमानित जीवोंको मान देकर भगवान्का सदा कीर्तन करे।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिनामानदेन कीर्तिनीयो सदा हरिः ॥१६॥

प्रभुके सन्मुख होकर प्रार्थना करे कि भगवन् ! मैं सत्य निवेदन करता हूँ कि मेरे हृदयमें अब कोई अभिलाषा नहीं है। केवल

मुझे निर्भर भक्ति प्रदान करे। रघुपुंगव ! मेरे मनको काम आदि दोषोंसे रहित करे, जिससे मैं आपका भजन कर सकूं।

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥१७॥

इस असार संसारके निस्तारके लिये सोते, बैठते, खाते, पीते दिन रात कृष्ण नामका जप करते रहने हीसे कल्याण होता है, इसकी अपेक्षा दूसरी विधि कल्याणकी नहीं है।

शयने भोजनेजाग्रद्दशायाञ्च दिवानिशम्।
कृष्णनाम महामन्त्रं वद जीव निरंतरम्॥
सर्वदा वद नामानि नास्तीह विधिरन्यथा ॥१८॥

भगवान्‌के नाममें पापका परिहार करनेकी महती शक्ति है। पातकी जन तो इतना पाप करही नहीं सकता है।

नाम्नोऽस्ति महती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावाकर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥१९॥

ब्राह्मणोंके भगवान तो अग्निदेवमें विराजते हैं विद्वानोंके हृदय में प्रभु विराजमान रहते हैं, अबोध जनोंके लिये प्रतिमाके अन्दर नारायण निवास करते हैं किन्तु ज्ञानियोंके लिये तो वे सर्वत्र ही मौजूद रहते हैं।

अग्नौतिष्ठति विप्राणां हृदि देवो मनीषिणाम्।
प्रतिमा स्वप्रबुद्धानां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥२०॥

दीनदयालु भगवान् भक्तिसे ही तुष्ट होते हैं। भगवान् व्याधके आचरणको न देखकर उसके प्रेमपर ही रीझे हैं। ध्रुवकी क्या अवस्था थी वह तो निरा अबोध बालक था, पर उसके हृदयकी भक्तिपर ही प्रभु प्रसन्न हुए हैं। गजेन्द्रके पास कौनसी विद्या थी ? जब उसने संकटके समय प्रेमसे स्मरण किया तो वहाँ ही भगवान् पहुँच गये और उसका उद्धार कर दिया। कुब्जामें कौनसा कमनीय रूप था ? सुदामाके पास कौनसा धन था ? विदुरकी कौनसी श्रेष्ठ जाति थी ? परन्तु नारायण तो नरके हृदयकी सच्ची भक्तिको देखते हैं। उग्रसेनको यदुपति बना दिया उसमें कौनसा पुरुषार्थ था ? जिसे देकर वे प्रभुको प्रसन्न करते। भगवान् माधव तो भक्तिके वशमें हैं। उन्हें किसीके गुणोंकी अपेक्षा नहीं हैं, वे तो भक्ति प्रिय हैं।

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
कुब्जायाः कमनीयरूपमधिकं किंवा सुदाम्नोधनं।
का जाति विदुरस्ययादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्
भक्त्या तुष्यति केवलं न तु गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ॥२१॥

हे मनरूपी पक्षी ! भगवान् जैसे महान् वृक्षको छोड़कर शुष्क संसार पादपपर बतला क्या कर रहा है ? जिस प्रभुरूपी वृक्षके आनन्द रूपी मूल है, गुणही उसके पत्र हैं, तत्त्व उसकी शाखाएँ हैं, वेदान्त ही उसके पुष्प और फल हैं। तथा मुक्ति ही जिसमें रस है। इन सब मूल, पत्र, पुष्प, फल, रस आदिसे परिपूर्ण भगवान् हरि रूपी महोच्चवृक्षको छोड़कर संसार रूपी शुष्क वृक्षपर भटकना उचित नहीं है। प्रभुकी शरणमें क्यों नहीं जाता ?।

आनन्दमूल गुण पल्लवतत्त्वशाखा-
वेदान्त पुष्प फल मुक्तिरसादि पूर्णम्।

चेतोविहंग ! हरितुंग तरुं विहाय
संसार शुष्कविटपे वद किं करोषि ॥२२॥

इन्दीवर श्याम भगवान् जिनके हृदयमें विराजमान हैं, उनको लाभ और जय ही सदा प्राप्त होता है, उनका पराजय कहाँ है ?।

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥२३॥

संसार रूपी सर्पके दंशसे जिसकी संज्ञा नष्ट हो गई है उसका मंत्र "कृष्ण" नाम है, जिसको सुनकर वह मुक्त हो जाता है।

संसार सर्प संदंष्ट नष्ट चेष्टस्य भेषजम् ।
कृष्णेति वैष्णवं मंत्रं श्रुत्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥२४॥

मनुष्य सब विघ्नोंको दूर करनेके लिये भगवान् विष्णु, शुक्लाम्बरधारी, चन्द्रके समान सुन्दर, चतुर्भुज, प्रसन्नवदनका ध्यान करें तो सब विघ्न शान्त होजाते हैं।

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजं ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥२५॥

हे आशुतोष शिव ! आप कृपाकर हाथ-पैरोंसे, कर्मसे, शरीरसे श्रवण-नयनके विकारसे विधि विहितके अपालनसे और अविहितके पालनसे जो अपराध हो गया हो उसे क्षमा करें। इस प्रार्थनासे मन हलका हो जाताहै।

कर-चरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवण नयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे ! श्री महादेव ! शंभो !॥२६॥

भगवान्‌के नाम स्मरणसे सब व्याधियोंका नाश होता है, यह सत्यहै ऐसा विज्ञ लोग कहते हैं।

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकलारोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥२७॥

लीला-विलास-प्रिय उस भगवान्‌को नमस्कार है जिसकी इच्छा के स्फुरणमात्रसे समुद्र सूखकर स्थल बन जाता है और स्थल समुद्र बन जाता है। मेरु पर्वत मृतिकाका कण बन जाता है। तृण वज्र-सा हो जाता है और वज्र तृण-सा बन जाता है. अग्नि शीतल हो जाती है और हिम (बर्फ) जलाने लगता है। उस परम पुरुष परमात्माकी लीला विचित्र है।

अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां
मेरुर्मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृण प्रायताम्।
वह्निः शीतलतां हिमं दहनतामायातियस्येच्छया
लीला दुर्ललिताद्भुत व्यसनिने देवाय तस्मै नमः॥२८॥

इस कलियुगमें केवल हरिनाम स्मरण ही एक मात्र गति है अन्य कोई उपाय नहीं है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥२९॥

हे नन्द नन्दन तुम जब माखन चुराकर डरके मारे भागनेकी सोच रहे हो तो मेरे अत्यन्त अंधकारमय मनमें आकर क्यों नहीं छिप जाते हो।

क्षीरसारमपहृत्यशंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया।
मानसे मम नितान्त तामसे नन्दनन्दन कथं न लीयसे ॥३०॥

हे प्रभो मुझे असत् प्रवृत्तियोंसे सद् प्रवृत्तियोंकी ओर लेजाओ मृत्युसे मुझे छुड़ाकर अमृत बनादें।

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ॥३१॥

जो आदि पुरुष संसारकी स्थिति, लय और उद्भव करनेका आदि कारण है और जिसकी योगमायाका पार करना योगीश्वरों के लिये भी कठिन है वह त्रिलोकीका नाथ हमारा कल्याण करेगा, इसमें चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता है।

विश्वस्य यः स्थिति लयोद्भव हेतुराद्यो
योगेश्वरैरपि दुरत्यय योगमायः।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवानधीश-
स्तत्रास्मदीय विमृशेन किया निहार्थः ॥३२॥

भगवान्की तरफ जब जीवकी मनोवृति आकृष्ट होती है, तब एक एक निमेष भी युग जैसा मालूम होने लगता है। नेत्राश्रु वर्षाकी तरह बर्षने लगते हैं और सारा जगत् भगवान् गोविन्दके विरहमें शून्य मालूम होता है।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥३३॥

जब भगवान्में सखी भावसे जीव अनुरक्त होता है, तब चाहे वह आलिङ्गन करे या पैरोंके नीचे रोंदकर नष्ट करदें, चाहें दर्शन न देकर मर्माहत करें वह चाहे जो करे अनुरक्त प्राणीका प्राणनाथ प्रभु तो वही है और कोई नहीं हो सकता है।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु वा-
म्यदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।

यथा तथा वा विदधातु लंपटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥३४॥

हे जीव ! सदा कृष्णनाम महामंत्रका जपकर। नाम जापके अतिरिक्त अन्य विधि भव तरणके लिये नहीं है।

कृष्णनाम महामंत्रं वद जीव निरन्तरम् ।
सर्वदा वद नामानि नास्तीह विधिरन्यथा ॥३५॥

कर्म, धर्म, सेवा शुश्रूषा आदिको छोड़कर जो केवल कृष्ण-कृष्ण की रट लगाते हैं, वे मूर्ख भगवानके द्वेषी हैं। भगवान् तो सर्वत्र व्यापक हैं, उनका तो अवतार धर्म (और अर्थकी रक्षा करने) हीके लिये होता है।

स्वधर्म कर्म विमुखाः कृष्ण कृष्णेतिराविणः ।
ते हरेर्द्वेषिणोमूढा धर्मार्थं जन्म यद् हरेः ॥३६॥

जब कभी मानसिक चिन्ता हो और मार्ग नहीं सूझता हो तब भगवान्से सोते समय प्रार्थना करनेसे कठिनाईको दूर करनेका मार्ग सूझ आता है यह अनेक बारका परीक्षित है। हे प्रभो मैं अपने बुद्धि कार्पण्यसे प्रकृतमें विचार्य विषयका निर्णय करनेमें असमर्थ हूँ अतः आपसे धर्मका मार्ग पूछता हूँ मैं आपका शिष्य हूँ। कृपाकर मिश्रित कल्याण कारक मार्ग दर्शन करें। मैं आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ। मेरी सहायता कीजिये।

कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्म संमूढ चेताः ।
यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥३७॥

भगवान् रामचन्द्रका यह ध्यान बड़ा ही सुन्दर है। भगवान्का स्वरूप दूर्वादल जैसा हरित (श्याम है)। नव विकसित कमल जैसे नेत्र हैं, स्वर्णमिश्रित वस्त्रोंको धारण किये हुए हैं अनेक प्रकार के आभूषणोंसे शरीर शोभायमान है, करोड़ों कामदेवोंकी अपेक्षा भी अधिक कमनीय और किशोर उनकी मूर्ति है हमारे समस्त मनोरथोंको वे पूर्ण करने वाले हैं, ऐसे जानकी-जीवन प्रभुका भजन करो।

दूर्वादलद्युतितनुं तरुणाब्जनेत्रं
हेमाम्बरं वरविभूषण भूषिताङ्गम्।
कन्दर्पकोटि कमनीय किशोरमूर्तिं
पूर्तिं मनोरथ भुवां भज जानकीशम् ॥३८॥

जिस देवाधि देवका ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुत् देवता दिव्य स्तोत्रोंसे स्तवन करते हैं, सामवेदोंके जानकार सामवेदोंसे पदक्रम और उपनिषदोंसे गायन करते हैं, योगिजन ध्यानस्थ होकर जिनका हृदयमें दर्शन करते हैं और जिनका अन्त सुर तथा असुर भी नहीं जानते हैं उस देवकेलिये नमस्कार है।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेनमनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥३९॥

हे नाथ ! यह संसार रूपी नद बड़ा गंभीर जलाशय है हमारी नौका जीर्ण-शीर्ण है, हम सब अबोध बालक बालिका इसमें भरे हुए हैं, यहाँ बैठी रमणियोंको तो केवल आप ही का विश्वास है हे माधव आपही इस समय हमारे नाव खेवैया कर्णधार हैं।

जीर्णास्तरीः सरिदियं च गभीरनीरा ।
बालावयं सकलमित्थमनर्थहेतुः ।
विश्वासभूमिरियमेव नितम्बिनीनां
यन्माधवस्त्वमसि संप्रति कर्णधारः ॥४०॥

भगवान् बालमुकुन्द हस्त-कमलसे चरण-कमलको मुखारविन्द में प्रवेश कर रहे हैं, वटके पत्रपर विराजमान हैं, उन्हें मैं मनसे स्मरण करता हूँ।

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटेशयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥४१॥

भगवान् भूत भावन शिवकी प्रार्थना किये बिना भक्तिमार्गकी पूर्ति नहीं होती है। अतः उमा महेशकी प्रार्थना ध्यान करना भी अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्यकी आत्मा ही शिव है, बुद्धि ही पार्वती है, प्राण सहचर है, शरीर ही उनके निवासका मन्दिर है। सांसारिक सब विषय भोग उस आत्मदेवकी पूजा है, निद्रा समाधि है, मनुष्य जो चलता फिरता है वही प्रदक्षिणा है और जो बात चीत करता है वही भगवान् आशुतोषकी स्तोत्रावली है इस प्रकार जो जो कर्म करता है वह सब उस शंभुकी ही आराधना है।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधि स्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वागिरो
यद्यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥४२॥

भगवान् शिवके गुण अनन्त हैं स्याही कृष्ण पर्वतके समान हो और समुद्र रूपी पात्रमें उसे घोलकर मषी (स्याही) बनायी जाय, कल्पतरुकी किसी श्रेष्ठ शाखासे लेखनी बनाई जाय, सारी

पृथ्वी ही लिखनेके लिये पत्र बनाया जावे एवं सदा शारदा स्वयं लिखने लगे तब भी प्रभुके गुणोंका पार नहीं आ सकता है।

असित गिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व कालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥४३॥

हे भगवान् शिव। आप शूल धारी हैं, तब भी नीरोग हैं, आप अत्यन्त वैराग्यवान् होते हुए भी रागवान् हैं भिक्षाचर होते हुए भी महेश्वर हैं और विषम दृष्टि (त्रिनेत्र) होते हुए भी समदृष्टि हैं। आपकी लीला विचित्र है।

अपि शूलधरो निरामय दृढ वैराग्य युतोऽपि रागवान्।
अपि भैक्ष्यचरो महेश्वरः समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन्॥
चरितं चित्रमिदं हिते प्रभोः ॥४४॥

भगवान्ने अपने एक नेत्रको ध्यानके लिये मुकुलित कर रक्खा है, दूसरा नेत्र पार्वतीजीके मुखारविन्दकी तरफ भोगाभिलाषासे देख रहा है और तीसरा नेत्र कामदेवको भस्म करनेके लिये ज्वालाओंसे युक्त अग्निसे ज्वलित हो रहा है ऐसी स्थिति समाधि समयमें हो रही है इस प्रकार भिन्न रस वाले नेत्रोंसे युक्त शिव हमारी रक्षा करें।

एकं ध्याननिमीलान्मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः
पार्वत्या वदनाम्बुजस्तनतरे शृङ्गारभारालसम्।
अन्यद्दूरविकृष्टचापमदन क्रोधानलोद्दीपितं
शंभोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु नः ॥४५॥

जिन शिवजीके वामाङ्गमें पार्वती विराजमान हैं, गंगाजी जटा-जूटमें सिरपर शोभा दे रही है. ललाटपर अर्ध चन्द्र खिल रहा है और गलेमें विष शोभा दे रहा है, कण्ठपर सर्पराजका हार पड़ा हुआ है ऐसे विभूतिसे भूषित सर्वत्र व्यापक शिव हमारी सदा सर्वत्र रक्षा करें।

वामाङ्गे च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसिव्यालराट्।
सोऽयं भूति विभूषितः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातु माम्॥

जिस शिवके शरीरपर चिताकी भस्म रमी हुई है जो विष खाते हैं, शरीर दिगम्बर है, जटाधारण किये हुए हैं गलेमें सर्पराजका हार है, कपाल हाथमें शोभा दे रहा है और भूतोंके ईश हैं तथापि जगदीश्वर कहलाते हैं ऐसी दशामें हे भवानि! यह सब तुम्हारे पाणिग्रहण करनेका ही शुभ फल प्राप्त हुवा है।

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिग्पटधरो
जटाधारी कंठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीम्
भवानि! त्वत्पाणिग्रहण परिपाटी फलमिदम्॥४७॥

जो समस्त जगत्के लावण्यकी अपेक्षा अत्युत्कृष्ट लावण्यसे सुशोभित हैं अर्थात परम सुन्दर हैं जो परम धन्या, त्रिभुवन जननी, जगत् पूज्या, उदार हृदया हैं, जो निःशंक होकर शिवके अंकमें विराजती हुई विद्युत्की तरह चमक दमकसे शोभित हो रही हैं और हँस रही हैं व जो रक्षा करनेमें दक्ष हैं और विपक्षावलीको लय करने

वाली हैं वह शंकर प्रिया शैलेन्द्र कन्या पार्वती आपका कल्याण करे।

युष्माकं काचिदन्या जगदुपरि समद्भूतलावण्य युक्ता
धन्या शैलेन्द्रकन्या त्रिभुवनजननी सर्वमान्या वदान्या।
निःशंकः शंकराङ्के तडिदिवविलसत्प्रोल्लसन्ती हसन्ती
रक्षा दक्षा विपक्षा वलिवलयकरी शंकरी शं करोतु॥४८॥

हे मातः ! न मुझे मंत्रका ज्ञान है, न तंत्रका ज्ञान है, न स्तुतिका ज्ञान है, न आपका आवाहन आता है, न ध्यान आता है न आपकी स्तुतिकी कथा आती है न आपकी मुद्रा आती है और न विलाप ही करना आता है किन्तु मातः यह जानता हूँ कि आपके अनुसरणसे क्लेशका निवारण होता है।

न मंत्रं नो तंत्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुति कथाम्।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्तदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥४९॥

विधिके न जाननेसे, धनके अभावमें, आलस्यसे और आपकी पूजा विधिके अशक्य (कठिन) होनेसे सेवामें त्रुटि हुई है उसे क्षमा करदें आपतो सारे संसारका उद्धार करनेवाली हैं और कल्याणकरी हैं हे मातः कहीं पुत्र तो कुपुत्र हो जाता है परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती है।

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात् तव चरणयोर्यात्रुटिरभूत्।
तदेतत्क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे !
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥५०॥

सब प्राणियोंके हृदयमें बुद्धिरूपसे विराजमान होकर स्वर्ग और मोक्षको देने वाली हे देवि ! नारायणि तुम्हें नमस्कार है।

सर्वस्य बुद्धि रूपेण जनस्य हृदिसंस्थिते ।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोस्तु ते ॥५१॥

तंत्रकार सारे संसारको दुर्गामय मानते हैं। उनकी दृष्टिमें पंचभूत तीनों लोक, स्त्रियां, मनुष्य, पशु और जो भी चराचर जगत् है वह सब दुर्गामय है। दुर्गाके सिवाय दूसरा कुछ नहीं है। वेदान्त वाले "सर्वं खल्विदंब्रह्म नेहनानास्ति किंचन" कहते हैं। वह भगवती दुर्गा हमारा कल्याण करें।

भूतानि दुर्गा भुवनानि दुर्गा स्त्रियो नरश्चापि पशुश्च दुर्गा ।
यद् यद्धि दृश्यं खलु सैव दुर्गा दुर्गास्वरूपादपरं न किञ्चित् ॥

※ समाप्त ※

है प्रतापकण्ठाभरण, सूक्तिपुञ्ज निरवद्य ।
सुनि गुनि सज्जन सुख लहहिं, पढि पुनि एकहु पद्य ॥
हिन्दी-भाषा-भाषि-हित, भाषा टीका कीन ।
श्री राजेश्वरदत्त इत, छमहिं दोष परबीन ॥

हर्ष का परिणाम विषाद है।

(भारतमञ्जरी)

लक्ष्मीश्चामरतारचारुहसिता मत्तेभकुम्भस्तनी
त्रैलोक्याक्रमणः पराक्रमभरः सम्भोगयोग्यं वयः ।

एवं सर्वनखर्वगर्वसुखदं संवर्ध्यमाणं पुनः
पर्यन्ते परिणाममीलदखिलास्वादं विषादास्पदम् ॥

—क्षेमेन्द्र ।

चँवरके समान स्वच्छ सुन्दर मुसक्यान वाली और मस्त हाथी के मस्तक पिण्ड जैसे स्तन वाली लक्ष्मी जिनके घरमें, त्रिलोकी को भी दबा देने वाला जिनका पराक्रम, सदा सम्भोगयोग्य (षोडश वर्षीय) जिनकी अवस्था ऐसा बड़े गर्व सुखको देने वाला कृष्णका जीवन अन्तमें परिणाम द्वारा समस्त आनन्द विहीन होकर विषादास्पद होगया ।

तत्वार्थ—किसी दिन हर्षका अन्त होकर अन्तमें विषाद ही रह जाता है ।

विचारसे शान्ति मिलती है ।

(भारतमञ्जरी)

रत्नोदारचतुस्समुद्ररसनां भुक्त्वा भुवं कौरवो
भग्नोरुः पतितः स निष्परिजनो जीवन्वृकैर्भक्षितः ।
गोपैर्विश्वजयी जितः स विजयः क्षुण्णाः तृणैर्वृष्णयः
तस्मात्सर्वमिदं विचार्य सुधिया शान्तौ मनो दीयताम् ॥ क्षेमेन्द्र

रत्नोंसे भरे चारों समुद्रोंकी खाईसे सुरक्षित समस्त पृथिवी को भोगकर युद्धमें जांघ टूटनेपर सेवक और अपने कुटुम्बियोंसे रहित पड़ा हुआ कौरव (दुर्योधन) जीते जी भेड़ियोंसे खाया गया, विश्व-विजयी विजय (अर्जुन) साधारण गोपोंसे जीता गया, असंख्य परिमाण वाले वृष्णि (यादव) साधारण तृणसे कट मरे, इन सब बातोंको विचार कर चित्तको शान्तिमें ही लगाना चाहिये।

तत्वार्थ—किसीका भी वैभव सदा स्थायी नहीं रहता ।

—: कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमालाका नवीन रत्न :—

जिस ग्रन्थको आयुर्वेद जगत् प्रतीक्षा कर रहा था

वह प्रस्तुत है:—

रसहृदयतन्त्रम्

[श्रीमद्गोविंदभगवत्पादाचार्य कृत]

यह ग्रन्थ पारदके १८ संस्कार एवं रस, रसायन और धातुकी कृतिके लिये सहायक माना जा रहा है। इसमें आपको निम्न विशेषताएं मिलेंगी:—

१. पारदके संस्कारोंको संस्कृत भाषामें और सरल हिन्दी टीका में योग्य वक्तव्यके साथ सुन्दर शैलीमें लिखा गया है।

२. इस पुस्तकमें रसायनोपयोगी पारद निर्माण और धातुवाद बनानेकी कृति भी सरल भाषामें दर्शायी गई है।

३. रंगीन आकर्षक अनेक चित्रोंसे इसकी शोभा और बढ़ रही है।

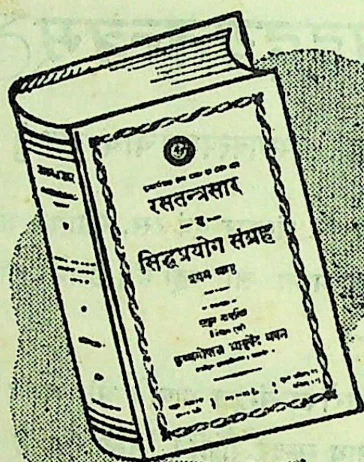
साइज १८×२२ अठपेजी (डिमाई) व्हाइट प्रिंटिंग मोटे कागजमें पृष्ठ संख्या ४०० से अधिक।

मूल्य—अजिल्द रु० ५·०० न० पै०, सजिल्द रु० ६-५०। पोस्टेज पेकिंग पृथक् होगा।

आयुर्वेदमें रुचि रखने वाले और औषधि निर्माण करने वाले प्रत्येक वैद्यके लिए मार्गदर्शक

—: दो ग्रन्थ रत्न :—

प्रथम खण्ड—
अजिल्द
मूल्य ९) रु०
सजिल्द
मूल्य ११)



द्वितीय खण्ड
अजिल्द
मूल्य ६) रु०
सजिल्द
मूल्य ७॥) रु.

—: इन ग्रन्थों की विशेषताएँ :—

(अ) सब प्रकारकी औषधियोंके शतशः अनुभूत प्रयोग इनमें दिए हैं।

(आ) कूपीपक्व रसायनकी सरल अनुभूत निर्माण विधियां इनमें दर्शायी गई हैं।

(इ) रोगानुसार और औषधियोंके नामानुसार अनुक्रमणिका दी गई है।

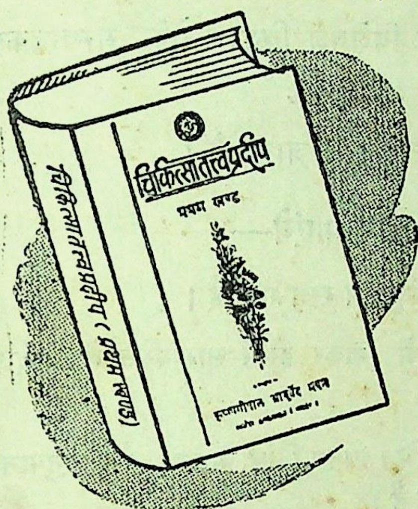
(ई) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और यू० पी० मेडीसिन बोर्ड द्वारा आलोच्य ग्रन्थ रूपसे स्वीकृत किया गया है।

गुजराती संस्करण—प्रथम भाग मूल्य—१०) द्वितीय भाग मूल्य- ८)

एक बार खरीद कर आप भी इनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करेंगे।

चिकित्सातत्त्व-प्रदीप प्रथम खण्ड

संशोधित परिवर्द्धित तृतीय संस्करण



यह ग्रन्थ कृष्णगोपाल ग्रन्थ मालाका द्वितीय रत्न है। इस पुस्तककी आयुर्वेद संसारने काफी उपयोगिता मानी है जिसके फलस्वरूप ही यह पुस्तक अनेक आयुर्वेदिक पाठ्यक्रमोंमें भी सम्मिलितकी गई है। इस ग्रन्थमें ८ प्रकरण हैं। १ आयुर्वेदीय विधि विधान २ आयुर्वेदके मूलद्रव्य त्रिदोष, ३ द्रव्यादृव्य चिकित्सा. ४ राग संप्राप्ति और यान्त्रिक विकृति, ५ शरीर शुद्धि, ६ चिकित्सा सहायक, ७ ज्वर प्रकरण ८ पचनेन्द्रिय सस्थान व्याधि प्रकरण।

इस ग्रन्थके द्वितीय संस्करणमें अनेक बातें छूट गई थीं। उनको इस तृतीय संस्करणमें विशद विवेचन सह बढ़ाया गया है तथा स्थान-स्थानपर शारीरिक अवयवोंके एवं रोगदर्शक (उत्तापदर्शक) अनेक चित्र भी दिये हैं और रोग संप्राप्ति एवं चिकित्सा सहायक विधानके वर्णनमें अवयवोंके स्थान, कार्य, स्वरूपादिका विशद विवेचन किया गया है। इसलिये सामान्य चिकित्सक गण भी इस पुस्तकके आधारसे रोग विनिर्णय सहज ही कर सकते हैं। डिमाई अठपेजी पृष्ठ संख्या ८१० मूल्य अजिल्द ९) सजिल्द ११)

स्वास्थ्य विषयक सचित्र मननीय मासिक पत्र

स्वास्थ्य

यह मासिक आयुर्वेदके विशेषज्ञ विद्वज्जनोंके सम्पादकत्व

~ में ~

 प्रकाशित किया जाता है।

इसमें आप निम्न विशेषताएं पाएंगे—

१. इस मासिकका मूल्य न्यूनतम रखा गया है।

२. स्वास्थ्य-रक्षाको लक्ष्यमें रखकर इसमें सारगर्भित लेख दिए जाते हैं।

३. इसमें अनेक प्रकारके अनुभूत प्रयोग विधि, मात्रा और अनुपान सहित प्रकट किए जाते हैं।

४. विशेष रोगोंके उपद्रव होनेपर उन रोगोंसे सम्बन्धित विशेषांक प्रकाशित करते हैं।

५. ऋतु परिवर्तनके समय स्वास्थ्य रक्षार्थ लेख समय समय पर दिए जाते हैं।

मूल्य—वार्षिक ३) रु०, विदेशसे ६ शिलिंग, एक प्रति ६ आने अथवा ३७ न० पै०।

इस मासिकके वार्षिक ग्राहक बन कर आप अपना आयुर्वेद विषयक ज्ञान बढ़ा सकते हैं और स्वास्थ्य लाभ कर सकते हैं।

—व्यवस्थापक



मुद्रक—
डा० माधुसिंह राठौर (मैनेजिंग ट्रस्टी कृष्ण-गोपाल आयुर्वेद भवन) के
प्रबन्ध द्वारा
कृष्ण-गोपाल मुद्रणालय, कालेड़ा-कृष्णगोपाल (अजमेर) में मुद्रित